व्याख्यान-समह-सार माला का प्रथम पुष्प

श्रावक का अहिंसा व्रत.

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलाल जी महाराज
के
व्याख्यानों के आधार पर

सम्पादक—मुन्नालाल शास्त्री

प्रकाशक—
श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचंद जी महाराज की
सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मंडल
रतलाम (मालवा)

प्रथमावृत्ति १०००
वीराब्द २४५४
विक्रमाब्द १९८५
मूल्य ।



वक्तव्य.

ज्ञानं पञ्चविधं प्रोक्तं श्रुतज्ञानं विशेषतः

प्राणी मात्र के दुःखों का अन्त कर अक्षय सुख देनेवाला एक धर्म ही है। किन्तु धर्माधर्म कृत्याकृत्य की पहचान आप्त पुरुषों के वाक्य (उपदेश) द्वारा ही सुगमता पूर्वक हो सकती है इसी कारण से शास्त्रकारों ने किसी अपेक्षा सब ज्ञानों से श्रुत ज्ञान को ही विशेष महत्व दिया है।

श्रुतज्ञान ही जगत का कल्याण कारक है। श्रुत ज्ञान अर्थात् आप्त पुरुषों के वाक्य, यही सिद्धान्त, आगम सूत्र, प्रवचन आदि अनेक नामों से प्रख्यात है। इन्हीं के द्वारा भूत काल में अनंत जीवों ने आत्म कल्याण किया, वर्तमान काल में अनेक जीव आत्म कल्याण कर रहे हैं, ऐसे ही अनागत काल में अनन्त जीव आत्म कल्याण करेंगे।

महत्पुरुषों के वचनों का प्रभाव नीतिकारों ने तो यहाँ तक गाया है कि -

श्रुत्वा धर्मं विजानाति, श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥

श्रवण करने से ही धर्म जाना जाता है, श्रवण करने से ही दुर्बुद्धि हटती है, श्रवण करने पर ही सत्य ज्ञान की प्राप्ति होती है, इसी तरह श्रवण करने से ही मोक्ष प्राप्ति होती है, जिसके सैकड़ों उदाहरण शास्त्रों में विद्यमान हैं।

महत्पुरुषों के एक एक वाक्य महान् ऋद्धि सिद्धि का दाता होता है। क्योंकि वे जगत के कल्याण की भावनाओं को मुख्य रख कर ही (अनेक प्रकार के कष्ट व परिषहों को सहन करते हुए एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में विचर कर) उपदेश फरमाते रहते हैं। किन्तु आर्यावर्त का ही बहुत सा विभाग ऐसा है जहाँ देशकालानुसार चारित्रकी कठिनाइयों को निभाते हुए नहीं विचार सकते हैं। उन प्रान्तों में बसनेवाले सज्जनों को व भावी प्रजा को भी उन महापुरुषों के वाक्य रूप साहित्य

का लाभ मिल सके, इस हेतु से कई एक महानुभावों की इच्छा जगत् विख्यात महाप्रतापी उग्र चारित्र क्रिया के आराधक वैराग्यपुंज श्रीमद् जैनाचार्य महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज के व्याख्यानों का संग्रह करके एक अच्छा साहित्य तैयार कराने की थी किन्तु श्रावकों में इस प्रकार का संगठन बल न होने से यह कार्य किसी ने अपने हाथ में न लिया, अतः हम लोग उस प्रभावशाली सारगर्भित साहित्य से वंचित ही रह गये। तथापि उन्हीं के गादीधर वर्तमान जैनाचार्य महाराज श्री श्री १००८ श्री जवाहिरलाल जी महाराज साहब की व्याख्यान शैली भी विद्वत्तायुक्त प्रतिभाशाली असरकारक वैसे ही रोचक भी है। इतना ही नहीं, वर्तमान युग की आवश्यकतानुसार समाज को सन्मार्ग दर्शक एवं जैन सिद्धान्तों की पुष्टिकारक है। इसी तरह श्रोताओं के हृदय में अपूर्व भाव पैदा करती है। संक्षेप में इन महात्मा के वाक्य भी जैन साहित्य की खामी को पूर्ण करने वाले हैं।

इस मण्डल की स्थापना होने के बाद कितने ही सभासदों की भावना प्रबल होते २ मण्डल की चतुर्थ बैठक (रतलाम) के समय प्रस्ताव में रक्खी गई, जिसको विद्यमान सभासदों ने उत्साह सहित अनुमोदन करके प्रस्ताव पास कर लिया। इतना ही नहीं उसको कार्य में परिणित करना व इसके लिये खर्च लगाना भी स्वीकार किया। तदनुसार श्रीमान् के व्याख्यानों का संग्रह सं० १९८३ के ब्यावर चातुर्मास में व सं० १९८४ के भीनासर के चातुर्मास में यों दोनों वर्ष में कराया गया और वे व्याख्यान ज्यों के त्यों छपवा कर प्रकाशित करने के लिये बहुत से सज्जनों ने इच्छा दर्शाई थी। इसी तरह ब्यावर में मण्डल की बैठक ने प्रस्ताव भी किया था तदनुसार आफिस भी समस्त व्याख्यान छपवा कर प्रसिद्ध करने की तैयारी कर रहा था किन्तु गत वर्ष भीनासर में मण्डल की छठी बैठक हुई थी उस में व्याख्यानों के विषय में यह ठहराव हुआ कि व्याख्यान संग्रह कराया जाता है वह भविष्य में भी कराया जावे और पहले जो संग्रह हुआ है व हो रहा है उनका संशोधन कराया जावे। तैयार होने पर आफिस तरफ से प्रसिद्ध किये जावें इत्यादि।

तदनुसार दोनों वर्ष के व्याख्यानों का संशोधन कार्य शुरू कराया। जिस पर से यह प्रतीत हुआ कि व्याख्यान जैसे के तैसे छपवाने में ग्रन्थ बहुत बढ़ जाने कोई २ विषय के मजमून में पुनरोक्ति हो जाने, प्रत्येक विषयों का प्रति पादन जुदे२ विभागों में बट जाने से साहित्य की परिपूर्णता में कमी रह जाने इसी तरह प्रत्येक विभाग की खड २ बन जाने से वाचक को जो आनन्द व असर होना चाहिये नहीं हो सकता। ऐसी ही राय कम २ विद्वान् व प्रतिष्ठित सज्जनों की मिली थी उन

पर मे सब व्याख्यानो म से छटणी कराके जिन २ विषयों की पुष्टी म जो २ प्रमाण हेतु, उदाहरण प्रथक् २ आये हैं, उनका एक स्थान पर संगठन कराना अत्यावश्यक जान कर, प० सुखालाल जी वैद्य सोजत वाला के द्वारा जो साहित्य तैयार कराया है, उसम से यह एक पुष्प आपके समक्ष रखते ह। यद्यपि ऐसा करने म मंडल ऑफिस को धन व समय का विशेष व्यय करना पडा किन्तु पाठकों के लाभार्थ प्रत्येक विषय पर एक २ निबन्ध बनवा कर प्रकाशित किया जाने का ही निश्चय किया है। उसम से यह 'श्रावक का अहिंसा व्रत' नामक पुस्तक आपके कर कमलों में पहुंचाते हैं। आशा है कि वाचक इस साहित्य को अपना कर हमारे उत्साह को बढावेंगे और पूर्ण कोशीश द्वारा अपने २ यहाँ ग्राहक बना कर उक्त साहित्य के प्रचार म अपना भी हाथ बटा लाभ के भागी बनेंगे।

यहाँ यह भी बता देना समयोचित होगा कि व्याख्यानो का संग्रह कराने व उक्त साहित्य तैयार कराने में मंडल को बहुत खर्च हुआ है। वह सब अलाहदा रख कर भीनासर कमीटी के ठहराव अनुसार केवल कागज व छपाई आदि खर्च के लागत के आधार पर ही पुस्तक की किमत रक्खी है। इसका स्पष्ट उदाहरण पुस्तक की रोचकता, भव्यता और विशालता से स्वय आपको अनुभव हो जावेगा।

विज्ञप्ति

उक्त साहित्य म जो २ भूल नजर आवे कृपया सूचित कर ताकि आगामी आवृत्ति म उचित सुधार किया जावे।

स्पष्टीकरण

साधु महात्माओं की भाषा परिमित होती है, इसीलिये वे खूब सोच समझ कर शास्त्र को दृष्टि म रख कर ही उपदेश फरमाते हैं। पर संग्राहक, अनुवादक, संशोधक व सम्पादक महाशयों से भाव उलट हो गये हों अथवा साधु की भाषा से विपरीत वचन लिखे गये हों तो यह जुम्मेवारी पूज्य श्री के ऊपर नहीं है किन्तु यह दोष कार्यकर्ताओं का समझ। जो २ विषय शास्त्र की दृष्टि से विरुद्ध मालूम दे उसका खुलासा पूज्य श्री से अथवा ऑफिस के साथ लिखा पढी करने से हो सकेगा। इत्यलम्

भवदीय—

चम्पालाल बांठिया   वर्द्धमान पीतलिया

सेक्रेटरी   प्रेसिडेण्ट

श्री श्वे० साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मंडल ऑफिस, रतलाम (मालवा)

विषय सूची.





॥ श्री ॥

श्रावक का अहिंसा व्रत ।



जीवन का उपयोग।



इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि मनुष्य जन्म बडे पुण्य से मिलता है। जो मनुष्य इस अमूल्य देह को पाकर भी व्यर्थ की मौज-शौक में इसका अंत कर देता है, उसके बराबर कोई मूर्ख नहीं कहला सकता। बुद्धिमान् इस देह को पाकर क्षण क्षण में अपनी श्रेष्ट साधना का मंत्र जपता रहता है पर मूर्ख यही समझता है कि मैंने मनुष्य जन्म पाया है, फिर ऐसा देह नहीं मिलेगा, इसलिये जो कुछ मौज-शौक करलूं वही मेरी है।

मित्रों! यह इस मनुष्य का अज्ञान है कि वह इस प्रकार का विचार लाता है। वह नहीं समझता कि मैं जिसको मौज-शौक समझ रहा हूं वही मेरे दुःख का कारण होगा। समझ भी कहां से? समझ ज्ञान के बिना नहीं आ सकती। 'असमझ' ही अज्ञान है और अज्ञान ही का दूसरा नाम आध्यात्मिक अन्धकार है। अज्ञान के बराबर मनुष्य के लिये कोई अंधकार दुनियां में नहीं है। संसार में जितने बुरे काम होते हैं, उन सब का कारण अज्ञानता और मन का तिमिर है। अज्ञानता को दूर करना अंधकार में से प्रकाश में आना है।

मित्रो ! आप लोग बिजली से परिचित हैं। आप जानते हैं कि बिजली पावर हाउस में पैदा होती है। और जिन जिन जगहोंपर इस के तार के साथ ग्लोब लग गये हैं, वहां के बटन दबाने से उन जगहोंपर अंधकार मिटकर प्रकाश फैल जाता है। ठीक इसी तरह जो लोग आध्यात्मिक अंधकार को मिटाना चाहते हैं, उन्हें सद्‌गुरु रूपी पावर हाउस से सम्बन्ध जोडना चाहिये। यानि रसिये कोरे सम्बन्ध जोडने से कुछ नहीं होगा। पावर हाउस पावर देता है, घर में उस के तार के साथ ग्लोबभी लगा है, पर जबतक बटन नहीं दबाया जाता, प्रकाश नहीं होता। अपने आध्यात्मिक अंधकार को र करने के लिये भी मनुष्य को भक्ति रूपी बटन दबा लेना चाहिये। गुरु में जितनी ताकत होगी उतना प्रकाश देगा।

गुरु का चुनाव पहले करना चाहिये। खूब परीक्षा कर देख लेना चाहिये कि जिसको मैं अपना गुरु बनाता हू वह वास्तव में गुरु बनने योग्य है या नहीं।

आज गुरु बनने के लिये बहुत से वेषधारी मनुष्य मुह- वि रहते हैं, पर परीक्षकों को मालूम होता है कि अधिकांश उनमें 'गुरु' तो क्या पर साथी बनने योग्य भी नहीं होते।

भारतवर्ष भावुक देश है। यहा के निवासियों मे जितना धर्म प्रेम है, उतना अन्य देश वासियों म नहीं। धर्म प्रेम ही के कारण 'साधु' नामधारी पर इतना भक्ति पूर्वक विश्वास करते हैं कि तन मन धन से सेवा करने तैयार रहते हैं। क्या भारतवर्ष को छोडकर किसी देश में ५६ लाख साधु ?

'नहीं।'

क्या आपने कभी यह हिसाब लगाया है कि इन साधुओं का प्रति दिन कितना खर्च भारतवर्ष को उठाना पडता है? लोग स्वय भूखों

रहते हैं, नंगे रहते हैं पर साधुओंके लिये भर पेट अन्न और वस्त्र का प्रबन्ध करते हैं ; साधुओं को कई बार ऐसे ऐसे माल खानेको मिलते हैं कि कई अभागों ने वैसे भोजन के दर्शनभी नहीं किये होंगे । यदि इस हिसाब से इनका खर्च गिना जाय तब तो कई लाख रुपैये होते हैं पर आप इस हिसाब से नहीं, साधारण से साधारण खुराक प्रति मनुष्य चार आने के हिसाब से भी जोडेंगे तब भी प्रतिदिन १४ लाख, प्रति मास ४ करोड २० लाख, और प्रति वर्ष ५० करोड ४० लाख रुपैये का खर्च होता है !!

लोगोंने इतना बडा खर्च अपने सिर क्यों उठा रक्खा है ? इस लिये कि हमारे में रहा हुआ जो अंधकार है वह दूर हो जाय । उद्देश्य कितना पवित्र और कितना उच्च है ! पर क्या आज यह उद्देश्य सफल होता है ? क्या इस भावुकता में वही उच्चता रही हुई है ?

'नहीं ।'

'क्यों ?'

'इस लिये कि सच्चे गुरु नहीं ।'

कई गुरु कहलानेवाले ऐसे हैं कि जिनका गांजा और भंग के बिना कुछ काम नहीं चलता, चडस के बिना जिनकी आंखें चढी रहती हैं, और दम लगाये बिना तो मानों उन का दम ही निकला जा रहा है ।

मित्रों ! आप ऐसोंको अपना गुरु न चुनिये । और ऐसों को भी न चुनिये, जो गुप्त और आश्चर्ययुक्त आध्यात्मिक ज्ञान रखते हुए भी कई बार असावधानी से चिडचिडेपन, खेद, मूर्खता या किसी प्रकार के दुर्व्यसन का आखेट बन जाते हैं । परंतु ऐसे को चुनिये, जो अपने महत्व को साहस, रोष शून्यता, दृढता, शांति और असीम धैर्य के द्वारा छिपाता है ।

यदि आपको ऐसे गुरु न मिले तो गुरु बिना रह जाओ पर अनधिकारी को गुरु मत बनाओ। जो अनधिकारी को गुरु बना लेता है, उसे दिखनेवाली इस छोटासी भूल के बदले महा पश्चात्ताप तथा अनन्त जन्म मरणका दुःख भोगना पडता है।

भाइयो! जैन साधुको शास्त्रकी भाषामें 'श्रमण' कहा है। और उसके उपासक को 'श्रमणोपासक'

कोई प्रश्न कर सकता है कि उपासकको 'श्रमणोपासक' क्यों कहा? 'अरिहंतोपासक' क्यों नहीं कहा? इसका उत्तर यह है कि 'श्रमणोपासक' कहने से अरिहंतोका भी समावेश हो जाता है पर केवल 'अरिहंतोपासक' कहनेसे श्रमणो का उपासक नहीं हो सकता। इसमें एक और भी बात है वह यह कि तीर्थंकर समय विशेषमें अवतार लेते हैं अतएव उनके जमानेमें जो होते हैं वे ही लाभ उठा सकते हैं। पर श्रमण तो जब तक प्रभु का शासन चलता है तब तक रहते हैं इस लिये उनको श्रमणों के दर्शन होते रहते हैं। पर अरिहंतों के नहीं।

श्रमणोपासक को शास्त्र में 'द्विजन्मा' और 'श्रावक' भी कहा है। क्यों कि सूत्रमें, व्रतधारी श्रावक होते ही उसके लिये पाठ कहा गया है कि—'श्रमणोपासए जाया' अर्थात् श्रावक का जन्म हुआ। श्रमणोपासक का अर्थ आप समझ गये होंगे और श्रावक का अर्थ शास्त्र सुननेवाला यह भी आप समझते होंगे। पर 'द्विजन्मा' शब्द का अर्थ आपके समझने योग्य है।

कोषों में और अन्य शास्त्रों में 'द्विजन्मा' शब्द के कई अर्थ मिलते हैं। जैसे ब्राह्मण, पक्षी, साधु, श्रावक आदि। ब्राह्मण का नाम द्विजन्मा तब पडता है जब कि उसका उपनयन (यज्ञोपवित) संस्कार हो जाता है। यज्ञोपवित (जनोई) लेने के बाद, वह संसार की माया जाल से दूर होकर तत्त्व विचार आदि में लीन हो जाता था

अर्थात् अपने पूर्व जीवन से बहुत भिन्नता कर लेना था, इसी लिये उसे (ब्राह्मणको) 'द्विजन्मा' यानें दूसरा जन्म धारण करनेवाला कहा है।

पक्षी को 'द्विजन्मा' क्यों कहा? इसका मतलब यह है कि पक्षी शुरूमें एक अंडे के रूपमें होता है। न उसके हाथ पैर होते हैं और न उसके पंख आदि सिर्फ तरल पदार्थ के रूपमें अंडे में रहता है। कालान्तर में वह अंडा फटकर उसमें से पंख आदि धारण किया हुआ पक्षी निकलता है। वह पक्षी पहले किस रूपमें था और बाद में किस रूपमें आगया अर्थात् उसने अपने जीवन काल में कैसा महान् अन्तर कर दिया, इसी लिये उसे भी 'द्विजन्मा' कहा है।

साधु के लिये यही बात समझनी चाहिये। साधु पहले गृहस्थ था। अब उसने साधु व्रत ले लिया, अपने जीवन में महान् अन्तर कर दिया इसलिये साधुको भी द्विजन्मा कहा है। यानी 'अणगार जाए' साधुका जन्म हुआ।

श्रावक द्विजन्मा क्यों कहा गया अब यह बात शायद आप समझ गये होंगे। श्रावक भी अपने जीवन में महान् अन्तर कर देता है इसलिये वह भी द्विजन्मा कहलाता है।

कई भाई सोचते होंगे कि हमने श्रावक के घर में जन्म लिया है इसलिये हम 'श्रावक' ही हैं। या ब्राह्मण के घर जन्म लिया है, इसलिये हम 'ब्राह्मण' ही हैं। अतः हम भी 'द्विजन्मा' [illegible] अधिकारी हैं। पर ऐसा नहीं है। यह खयाल करना भी [illegible]

'कारण?'

कारण यही कि जैसे मयूर, हंस, बगुला आदि [illegible] को हम मयूर, हंस, बगुला नहीं कह सकते। वे [illegible] यह हम मानते हैं, पर ये जो पक्षाहार हैं, ऐसा [illegible]

न्तर में जब ये फूटकर पक्षीरूप धारण कर लेंगे तब यथा नाम कहे जा सकेंगे और तभी ये 'द्विजन्मा' कहलाने के अधिकारी समझे जायेंगे।

इसी प्रकार श्रावक या ब्राह्मणके घर जन्म ले लिया, यह तो हुआ उन पक्षियोंकी तरह अंडे के रूप आना, पर जब श्रावकपुत्र श्रावक व्रत धारण कर लेता है और ब्राह्मण पुत्र का उपनयन संस्कार होता है तभी वे क्रमशः श्रावक या ब्राह्मण कहलाते हैं और तभी द्विजन्मा कहलाने के लिये अधिकारी माने जाते हैं।

जो श्रावक-व्रतसे अज्ञात है, मिथ्या बोलता है, दुराचरणोंका सेवन करता है वह 'द्विजन्मा' नहीं है। इसी प्रकार जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य आदि गुणोंसे रहित है, संसारकी माया जाल से दूर नहीं है, वह भी 'द्विजन्मा' नहीं है।

जैन शास्त्रने 'द्विजन्मा' 'श्रमणोपासक' या 'श्रावक' बनने में, हरेक मनुष्य के लिये उदारता पूर्वक द्वार खोले हैं। जब आप शास्त्र खोलकर देखेंगे, तो पता लगेगा उच्च से उच्च वर्ण से लेकर शूद्र तक जैन श्रावक तो क्या पर साधु तक बने हैं।

जो शास्त्र धर्म पालनके लिये इस प्रकारका हरेक मनुष्यको समानाधिकार नहीं देता वह शास्त्र कहलाने योग्य नहीं कहा जा सकता।

वैसे तो संसारमें 'शास्त्र' नामकी बहुतसी पुस्तकें हैं। वैद्यक शास्त्र 'शास्त्र' कहलाता है, कोटाकी कानूनकी पुस्तक यानी 'धारा शास्त्र' भी 'शास्त्र' कहलाता है पर मैंने जो 'शास्त्र' शब्द का नाम लिया है, वह इनसे बिलकुल भिन्न है। ये शास्त्र शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले शरीर का ही भला चाहनेवाले हैं इसलिये ये लौकिक शास्त्र हैं, पर जिसके द्वारा शारीरिक ममत्व छूटे आत्माके अन्वेषण में सहायता मिले, आत्मा से परमात्मा बननेका जिसमे ज्ञान प्राप्त हो और इन्हीं

बातोंके साथ इन्हीं सम्बन्ध में जगतके साहित्य का विचार आवे, उसे शास्त्रकार ' शास्त्र ' कहते है।

शास्त्रों के अगाध विचारोंका हम वर्णन नहीं कर सकते। हमारी जिह्वा थक जाती है। वैदिक ग्रंथोंमें इसी भावको व्यक्त करनेके लिये ' नेति नेति ' शब्द मिलता है।

प्रिय मित्रों ! जिस शास्त्र का मैंने उल्लेख किया है क्या यह शास्त्र क्या यह उदार शास्त्र किसी व्यक्ति विशेष के साथ पक्षपात करेगा ? क्या वह कभी कहेगा कि धर्म पालनेका अधिकार अमुक अमुक व्यक्ति को है ? क्या यह कहेगा कि धर्म पालनेका अधिकारी अमुक ही हो सक्ता है और अमुकोंके लिये अनधिकार चेष्टा है ?

' नहा, कभी नहीं। '

पैर में सोना हरेक नहीं पहन सकता। जिसके ऊपर राजाकी महरबानी होती है वही पहनता है। इसका मतलब यह हुआ कि सोना महरबानी की चीज है। इसका उपयोग हरेक नहीं कर सकता। धर्म महरबानीकी चीज नहीं। जो धर्म किसी का पक्षपात नहीं करता वही धर्म ' धर्म ' है और वही राष्ट्रीय व विश्वधर्म कहलाने योग्य है।

कई भाई सोचते हैं कि धर्मकी आराधना अमुक व्यक्ति विशेष व साधु ही कर सक्ते हैं, हरेक नहीं, यह विचार बिना जडका है। धर्मका इतना सकुचित अर्थ नहीं है। धर्म व ऐसी मात्रा नहीं है कि उसका उपयोग थोडे व्यक्ति ही कर सके और जगत मात्र उससे वंचित रहे। अगर धर्ममें इतनी सकुचित मात्रा ही होती तो धर्मके फैलाने वाले अव-तारोंको लोग ईश्वर, परमेश्वर, प्रभु के नाम से क्यों पुकारते ? धर्म खास व्यक्तियों के लिए नहीं पर सारे समार के लिये है।

जिस प्रकार कुदरतकी चाजोंको उपयोगमें लाने का सबको हक है उसी प्रकार धर्मको पालनेमें सबका हक बराबर है। सूर्य किसी खास व्यक्ति के घर प्रकाश नहीं करता पर सारे जगत को प्रकाश देता है। जल किसी खास व्यक्तिका तृषाको नहीं बुझाता पर पानेवाले सब प्राणियां की बुझाता है। वायु, कुछ प्राणियोंके लिये ही जीवन दाता नहीं वरन सब प्राणियोंके लिये है। अग्नि केवल राजा के ही पकानेके बनाने में काममें नहीं आती पर सर्व साधारण उसका उपयोग कर अपने अपने उपयोगकी वस्तुए बना सकते हैं।

मित्रों! यदि सूर्यमें उपरोक्त गुण न हो, जलमें ऊपर कही हुई शक्ति न हो, वायुमें बतलाई हुई विशेषता न हो, अग्नि पक्षपात रखती हो तो क्या कोई उन्हे, सूर्य, जल, वायु, अग्नि आदि के नाम से पुकारेंगे?

'नहीं।'

इसी प्रकार धर्म सबके काममें आनेकी वस्तु है। जो धर्म कुछ व्यक्तियोंके काममें आवे और कुछके न आवे वह अपूर्ण है।

कुदरत की सब वस्तुओंपर सर्व साधारण का हक है, हरेक को अधिकार है कि वह उन चीजोंको काममें लावे। यदि उन वस्तुओंसे किसी को कुछ हानि पहुंचे तो यह दोष उस वस्तुका नही है, वस्तु तो गुण वाली ही है। पर उससे जो अवगुण हुआ है वह उस उपयोग करनेवालेकी प्रकृति के अनुसार नहीं थी, इसलिये हुआ।

सूर्य सबको रोशनी देनेवाला है पर संसारमें कितनेही प्राणियों के लिये यह रोशनी अन्धकार पैदा करनेवाला सी हो जाता है। जैसे—उल्लू जिमगादर आदि को सूर्य के प्रकाश में दिखाई नहीं देता। इनको रात्रिमेंही दिखना है। इन प्राणियोंको दिखाई नहीं देता यह दोष सूर्यका नहीं, पर इनकी प्रकृति का है।

कुदरतकी वस्तु सबको फायदा पहुंचाती है, चाहे उसका उपयोग राजा करे, ब्राह्मण करे, चाण्डाल करे, साधु करे, सबके लिये वह एक रूप है। किसीका भेद भाव नहीं करती। धर्मभी ऐसी ही वस्तु है।

कई भाई धर्मको एक 'हौआ' समझते हैं। वे समझते हैं कि धर्म एक भयंकर छूतकी बीमारी है। जो इसका स्पर्श करता है, उसका सर्व नाश हुए बिना नहीं रहता। संसार में आज जो विशृंखलता फैली हुई नजर आती है, वे समझते हैं कि इसके फैलानेमें 'धर्म' नामकी वस्तुका जबरदस्त हाथ है। मैंने पत्रोंमें ऐसे लेख देखे हैं, लोग इसी विश्वास के कारण 'ईश्वर' और 'धर्म' नामकी वस्तुका अस्तित्व दुनियामेंसे उठानेके लिये कमर कस रहे हैं। वे समझते हैं कि 'ईश्वर' और 'धर्म' जितने जल्दी दुनियाके पर्देसे उठ जाय उतनाही जल्दी मानव समाजका भला होगा।

जिन युक्तियों के आधार पर इन भाइयोंने 'ईश्वर' और 'धर्म' को धर्म चक्राकार करने का किया है, वे युक्तियें इतनी पोची और सार हीन है कि सिर्फ धर्म की व्याख्या जाननेवाला बालक भी उनका खंडन सहज से कर सकता है।

मित्रों! धर्म यदि छूत की बिमारी की तरह होता, उसका फल दुनिया में दुःख फैलाने वाला, सुव्यवस्था में हस्तक्षेप करनेवाला मालूम होता तो तीर्थंकर अवतार और महापुरुष इसकी जड़ मजबूत करने के लिये क्या इतना उद्योग करते?

जिन भाईयोंने शास्त्रों का कुछ भी मनन किया है, वे जानते हैं कि धर्म परलोक में सुख देने वाला ही नहीं पर इहलोक में भी कल्याणकारी है। *

---

* इहलोए परलोए हिआए सोहाए खमाए निस्सेसाए अणुगामियत्ताए भवइ।

धर्म का जैसा सुन्दर व्याख्या जैन शास्त्र बतला रहा है, वैसा ही कणाद न्यायशास्त्र में भी बतलाया है।*

जिस 'धर्म' शब्द का इतना सुन्दर व्याख्या है भला क्या वह त्यागने योग्य माना जा सकता है?

जिन दिनों मानव समाज में धर्म का आदर था, उन दिनों वह आनन्द से अठखेलियाँ करती थी। पर जब से उसके प्रति उदासीन रहना आरम्भ किया तभीसे घोर हाहाकार और चारों तरफ से करुणापूर्ण चित्कार सुनाई देता है।

धर्म पालन के दो मार्ग है। एक गार्हस्थ्यरूपसे और दूसरा अणगार रूप से। गृहस्थावस्था में रहकर जो धर्म पालन करता है, वह 'श्रावक' कहलाता है और घरबार त्याग कर जो धर्म आराधना करता है वह कहलाता है—'साधु'।

मित्रों! साधु के आचार विचार क्या होते हैं, फिर कभी मौका हुआ तो बतलाऊंगा। अभी आप लोगोंको श्रावक के कर्तव्य क्या होते हैं, बतलाना चाहता हूं।

यह बात तो मैंने पहले ही प्रगट कर दी थी कि श्रावक हरेक जातिका बन सकता है। इसके लिये शास्त्र यह नहीं कहता कि अमुक जातिवाला ही हो।

श्रावक के दो भेद होते हैं। एक 'समकिती—श्रावक' और दूसरा 'व्रती—श्रावक'।

समकिती—श्रावक उसे कहते है, जो देव 'अरिहन्त', गुरु 'निर्ग्रन्थ', और धर्म 'अरिहन्त भाषित', पर आस्था रखता है।

* यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः।

व्रती-श्रावक वह कहलाता है, जो ऊपर कही हुई बातों के मानने के साथ साथ श्रावक के लिये जो जो व्रत बतलाये गये हैं, उनका यथा शक्ति पालन करनेवाला हो।

मित्रों ! बारह व्रतधारी श्रावकों की अपेक्षा आज सामान्य व अपूर्ण व्रतधारी श्रावक ज्यादा देखने में आते हैं। आप लोगों में ज्यादा तर किंचित व्रतधारी श्रावक ही हैं। इसका कारण हमें तो यही मालूम होता है कि आप लोग १२ व्रतधारी श्रावक बनने में कठिनता का अनुभव करते हैं। आप समझते हैं कि व्रती श्रावक बनना बहुत मुश्किल है। १२ व्रतधारी व्रती श्रावक बनने पर संसार का हम कुछ भी काम नहीं कर सकते। १२ व्रतधारी-श्रावक बनने पर हमको दुनिया के सब कामों से अलग रहना पडेगा। हमें हमारी सुख-समृद्धि से वंचित रहना पडेगा। और हमें उनसे भी दूर रहना पडेगा, जिन बन्धुओं को और स्त्री पुत्रों को हम बहुत ही प्यार करते हैं।

मित्रों ! व्रती श्रावक बनने में आप जिन जिन कठिनाइयों का अनुमान करते हैं, विश्वास रखिये वे कठिनाइयें इसमें नहीं है।

इस बात को तो आप खूब जानते होंगे कि 'आनंद' 'कामदेव' आदि बडे बडे ऋद्धिशाली पुरुष व्रती श्रावक थे और चेटक उदायण आदि बडे बडे राजा भी।

आप अपनी ऋद्धि और वृद्धिके साथ सुखसे इनके ऋद्धि वृद्धि सुखके साथ तुलना कीजिये। जब इतने बडे २ पुरुषभी व्रती श्रावक हो सकते हैं तब भला सोचिये तो सही आप क्यों नहीं हो सकते !

बंगालमें चैतन्य प्रभु नामके एक प्रसिद्ध भक्त हो गये हैं। उन्होंने बहुत से ऐसे देवी भक्तों को जो पशु बलिदान के पक्षपाती थे अहिंसक बनाया उनके उपदेशका असर बंगाल पर इतना पडा कि वहा

के बहुत से मनुष्य उनके मन के अनुयायी बन गये। इनके शिष्योंमें कई करोड़पति भी थे। चैतन्य प्रभु गरीबों और अमीरोंमें कोई भेद नहीं रखते थे। इनके गरीब शिष्य जिस प्रकार भिक्षा मांगने आया करते उसी प्रकार ये धनवान करोड़पति शिष्यों को भी यही काम सौंपते थे। इनके शिष्य केवल रोटीका ही भिक्षा नहीं मांगते पर 'मित्रों परमेश्वरका नामलो' यह भिक्षा भी मांगते थे। जिस समय लोग करोड़पतियों के बच्चों को साधु वेषमें देखते उनका हृदय प्रेमसे उमड़ पड़ता और शान्ति से निर्गोद साधु द्वारा भी इनका आदरसत्कार कर अपना अहोभाग्य मानते थ। जब इनसे कोई स्त्री पुरुष भिक्षा देने तयार होते तब कहते कि मुझे इस भिक्षाकी जरूरत नहीं है अतरात्मा जिससे तृप्त हो, ऐसा ईश्वर के स्मरण रूपी भिक्षा दीजिये।

चैतन्य प्रभु एक बार दक्षिणमें गये। एक दिन उन्होंने गीता पाठ करनेवाले एक पंडितके पास बैठे हुए एक श्रोता की आखों से अविरल अश्रुधारा बहती देखी। वह था किसान। चैतन्य प्रभु ने उससे पूछा,— भक्त! तू क्या समझा?

किसान — महाराज, भगवान् कृष्णने अर्जुनको जो वाणी सुनाई, मेरे ऐसे भाग्य कहां कि उसे सुनता। आज मैं उस वाणी को सुनकर धन्य धन्य हुआ हूं। इसी आनंद से मेरा हृदय उछल रहा है, बाकी मैं कुछ नहीं समझा। गीतापाठी पंडित के हृदयमें ऐसा प्रेम न था।

प्यारे मित्रों! इसी तरह आप लोग भी तीर्थंकरोंकी वाणि को अनन्य प्रेमसे श्रवण करेंगे तो आपके हृदय भी उस किसान की भांति द्रवित होंगे। तीर्थंकरों और गणधरों की वाणीको सुन कर भी आपके हृदय प्रेमसे न उमगेंगे तब कब उमगेंगे? याद रखिये जिस मनुष्यका हृदय कोमल होगा वही उपदेश ग्रहण कर सकेगा। हृदय कमल विकसित किये बिना आनंद कहां?

आप लोगोंने आनंद कामदेव आदि श्रावकों के कई बार चरित्र सुने होंगे, यदि हृदय कोमल कर सुनते तो असर अवश्य होता। आपके हृदय से यह उमंग अवश्य फूट निकलती कि जब ऐसे ऐसे सांसारिक कार्य करनेवाले भी व्रती–श्रावक हो सकते हैं तब हम क्यों न बनें?

पानी में रहनेवाला कमल सूर्यकी किरणों को स्पर्श करते ही खिल उठता है पर पानी से बाहर रहनेवाला सूख जाता है।

मित्रों! क्या आप जानते हैं कि बडे बडे श्रावक गृहस्थों और राजा महाराजाओं के चरित्रों की नोंध शास्त्र में क्यों ली गई? इसीलिये कि इन चरित्रों से दूसरे लोग शिक्षा लें और अपने जीवन को नियमित बनावें।

विद्वानों का कहना है कि 'अनियमित जीवन सच्चा जीवन नहीं है।' अतएव समझदारों का कर्तव्य है कि अपने जीवन में एक भी ऐसा कार्य न होने दें जो अनियमित ढंग से किया जा सके। अनियमित कार्यों का कोई ढांचा तो बनाया जाता ही नहीं, केवल अटकल पच्चू होते हैं। जो मनुष्य मकान बनवाते समय अटकलपच्चू का सहारा लेता है ऐसा सुदृढ नहीं होता जैसा विचारपूर्वक बनाते।

क्यों? इसलिये कि आप जानते हैं कि अगर मकान का नकशा ठीक तौर से न बनाया जायगा तो मकान सुदृढ और अच्छे ढंग से न होगा।

मित्रों! इसी प्रकार आप याद रखिये कि नकशा या ढांचा बनाने का नियम सिर्फ मकान के लिये ही लागू नहीं पडता पर हरेक काम में लागू पड़ता है। लेखक के पुस्तक रचने में, चित्रकारके चित्र बनाने में, वक्ता के व्याख्यान देने में, सुधारकके सुधार करने में, आविष्कारक के गवेषण में, सेनापति के संग्राम कराने में, इन सभी कार्यों में, कार्य

आरम्भ के पूर्व जिस प्रकार कार्य करना हो उसका नकशा, मस्तिष्क में सावधानी के साथ रच लेना पड़ता है। जैसा पूर्व कल्पित नकशे की एकता, सुदृढ़ता और पूर्णता होगी वैसी ही अन्त में उस कार्य की सिद्धि होगी।

आप लोग अपने जीवनको नियमित बनाइये नियमित बनानेसे आपका जीवन परिपूर्णता को पहुंचने लगेगा। और आपको अपने जीवन का प्रत्येक क्षण शांतिमय और हरेक कार्य सुख पूर्ण प्रतीत होगा।

यदि आप में यह सोचने की ताकत नहीं कि हम किस प्रकार अपने जीवनको अच्छा बनावें तो आप शास्त्र में वर्णित बड़े बड़े श्रावकों के आदर्श चरित्रोंको सामने रखिये। सामने रखकर उन चरित्रोंके भावको समझिये। चरित्रोंका भाव शरीरमें रहे जीवके समान है। जिस शरीरमें जीव नहीं वह शरीर किसी कामका नहीं। जीव बिना के शरीर को कोई प्यार नहीं करता, वह सबको भयंकर-सा दिखाई देता है। जीव बिना के शरीरको लोग गाड़ देते हैं, जला देते हैं, पानी में फेंक देते हैं, घरमें उपयोगी वस्तुके तरह कोई उसका संचय नहीं करता। इसी प्रकार कथा के भावको न समझनेसे कोई फल नहीं होता वह चैतन्य बिना के शरीरके समान है। वस्तुकी कीमत उसमें रहे हुए सारभूत गुणसे है। सारहीन वस्तुको कोई नहीं पूछता वह निकम्मी है।

यदि आप चरित्र के भावको समझकर उसे अपने जीवन में उतार लेंगे तो निश्चय समझिये कि आप भी उस चरित्रनायक के समान बन जायंगे। यही उसके समान बनने की कुंजी है।

कई बार वक्ता लोग कथा के बाहिरी वर्णनको बड़े बड़े अलंकारों से सजाते हैं पर सार भूत वर्णनको बहुत सूक्ष्मरूप—अल्परूप देते हैं, इस लिए श्रोता लोग उस कथा के सारको समझ ही नहीं सकते। कई

जगह ऐसा भी होता है कि श्रोता ही अर्थका अनर्थ कर देता है। वक्ता कहता क्या है और आप समझते क्या हैं।

एक पंडितजी रामायण की कथा बांच रहे थे। उन्होंने कहा— 'सीताका हरण हो गया' पर एक श्रोता ने समझा 'सीताका हरणिया हो गया यानी सीता मृगा (हरिणी) बन गई।

कथा रोज चलती थी। वह श्रोता हमेशा उत्सुक रहता कि देखें सीता, हरिणी से वास्तविक सीता कब बनती है। बहुत दिनों बाद कथा समाप्त होनेके अवसर तक भी, हरिणी बनी हुई सीता का वास्तविक सीता होनेकी बात न सुनी तब उस श्रोतासे न रहा गया, वह बोल ही तो उठा कि 'पंडित जी महाराज! सीता हरिणी तो हो गई पर फिर सीता हुई या नहीं?'

पंडितजीने अपने सिरपर हाथ लगाकर कहा—'फूटे नसीब तुम्हारे और हमारे शामिल हो! मैंने कहा था क्या और तुम समझे क्या?'

भाइयों! जिस प्रकार इस श्रोताने अपनी ही भूल से [illegible] अर्थ किया वैसा न होने पावे।

कई भाई आजकल निकलते हुए शास्त्रों को [illegible] आप बाच जाते हैं। यह अच्छा है, पर इससेभी अच्छा [illegible] कि अपने से विशेष विद्वान् साधु के पासही से सुनें। [illegible] वचनों के द्वारा आपको समझायेंगे उसका असर कुछ [illegible] अपने आप पढनेका कुछ और हो। भोले साधुको [illegible] निकले हुए शब्द साधारण भले ही जँचें पर उनमें [illegible] शक्ति होती है। हाथी दांत तो आपने देखा ही है—। [illegible] होता है तब उसके द्वारा वह नगर के दरवाजे [illegible] डालता है। पर जब वही दांत खेरादीके यहां [illegible]

पहनता है उसम वह शक्ति नहीं होती। भले ही य० चूडा बहुतेके थगारको बढादे पर यह किवाड तोडने की शक्ति, जो हाथी के पास रहने पर थी, वह उस में कभी नहा आसकती इसी प्रकार धर्मगुरु के मुखारविंद से निकले हुए वचनों में जो शक्ति होती है वह उस दांतवाले हाथी के पराक्रम के सदृश होती है और जो साधारण मनुष्यों के मुह से वचन निकलते है या खुद छपे हुए ग्रथादि पढते हैं वे उसे उस बहिन के चूडे के समान भले हा शोभा देने वाले हों पर उसकी बराबरी में कभी नहीं कर सकते।

मैंने ऊपर साधु के वचन की जो विशेषता बतलाई है वह नाम धारी साधु के वचन से तान्लुक नहीं रखती। नामधारी साधु के वचन में वह शक्ति न मिलेगी यह उसी साधु के अन्दर उतनेही विशेष प्रमाण में मिलगी जो जितना ध्यानी मौनी और योगाभ्यासी अर्थात भावित आत्माज्ञान तथा रूप का मुनि होगा।

ध्यानी मौनी और योगाभ्यासी साधु के साथ यदि इतना समय न हो कि वह आपको शास्त्र सुना सके और कवल कुछ सत्संगका हा लाभ आपको मिले तो भी आपको निराश न होना चाहिये। सच्चे साधुके सत्संगसे सामी के पापोंका अन्त जरूर होजाता है, ऐसे कई उदाहरण मिलते है। प्रभवा चोर और [illegible] सच्चे साधुओं के समागमसे पवित्र बनगये। इसीप्रकार वाल्मिकी नामका एक बडा भारी हत्यारा डाकू था। यह कोली था। साधुओं पर भी इसको दया न आती थी मगर सत्संगसे वह वाल्मिकी अपनेमें महर्षि बन गया। जिसकी रची हुई रामायण को लोग बडा भक्तिपूर्वक पढते है और अपने जीवनका आदर्श बनाते हैं।

१२ व्रतधारी श्रावक बननेका उल्लेख हमने ऊपर किया था। हमने कहा था कि श्रावकव्रती इसलिए नहीं बनते कि व इसमें कठिनता का ० करते है।

मित्रों ! जिस प्रकारका जीवन अभी आप बिताते है, उसमेंकी उच्छृखलता, व्रत धारण करनेपर आपको जरूर निकाल देनी होगी पर उस उच्छृखलता के निकालने से आपकी हानि न होगी, लाभ होगा। लाभ आपको ही नहीं पर ससारको भी होगा।

आज क अधिकांश लोगों में उच्छृखलता बढ रही है। उनकी यह उच्छृखलता उनके हरेक काम में नजर आती है। उच्छृखलता के कारण से ही आज सारे ससार में वर्णसकर कार्य फैल रहे हैं। वर्णसकर कार्य से मेरा मतलब यह है कि जिस वर्णवालेको जो कार्य करना चाहिये उसे न कर भिन्न वर्णवाले के कार्य को स्वीकार करना। वर्णसकर कार्य दुनिया के लिए हानिकर है। ससारमें आज इतनी खेचा-तानी करने पर भी लोग सुखपूर्वक अपना पेट नहीं भर सकते। इसके खास कारणोंमें से यह भी एक है।

श्रीकृष्ण ने गीताके अन्दर—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुण', पर धर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधन श्रेयः, पर धर्मो भयावह'॥

'यदि अपने धर्ममें कुछ कठिनाईयें हों और दूसरे के धर्ममें सरलता दिखलाई देती हो तो भी अपने धर्मके लिए प्राण दे देने चाहिये—लिखा है

'अपने धर्मके लिए प्राण दे देने चाहिये' क्या इसका मतलब यह है कि एक शराबी शराब पीना अपना धर्म समझता है शराब के बिना उसका कुछ भी काम नहीं चलता इससे उसे मर जाना चाहिये ? क्या एक आदमी पर स्त्री के साथ मौज मजा उडानेमें ही धर्म मानता है उसके बिना उसे चैन नहीं पडती, कोई इस दुष्कर्मसे छुडाने की कोशश करे तो क्या उसे उसके विरुद्ध लडकर मर जाना चाहिये ? राजा प्रदेशी जिसके हाथ सदा खून-से सने रहते थे, मनुष्योंकी हिंसा करना ही उसने

अपना धर्म मान लिया था क्या उसे अपना वह धर्म मुनिके उपदेश से न त्यागना चाहिये था ?

तब इस श्लोकका क्या अर्थ हुआ ?

मित्रों ! यदि अपने कार्य को ही चाहे वह बुरा ही क्यों न हो, उसे ही धर्म मान लिया जाय तबतो उसे उसके लिए मर जाना ही चाहिये। पर ऐसा अर्थ नहीं है। जो ऐसा अर्थ मानता है वह बड़ी भारी गलती करता है।

हमने जहां तक इस श्लोक पर विचार किया है तथा अन्य विद्वानों के इस पर के विचार सुने हैं उससे यही विश्वास होता है कि यहाँ 'धर्म' शब्दका सम्बन्ध वर्णाश्रम धर्म के साथ है, न कि किसी और अर्थ के रूपमें।

वर्णाश्रम धर्म के साथ यदि ऐसा कड़ा उपदेश न दिया जाता तो संसार की व्यवस्था ठीक तरह से नहीं रहती।

भारतवर्षकी सामाजिक नींव वर्णाश्रम पर कायम की गई थी। जब तक लोग अपने अपने वर्ण के अनुसार ठीक २ तरह से कार्य करते थे तब तक शान्ति थी पर जब इसकी स्थिति डाँवाडोल हो गई तभी से सारे सुखोंका जड़ हिल गई।

पहले का वर्णाश्रम आजकल से बिल्कुल भिन्नता रखता था। आजकल का वर्णाश्रम केवल नाम मात्र का वर्णाश्रम है। आज का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का पुत्र, अपने पूर्वज इसी वर्ण में गिने जाते थे इसलिये अपना भी उसी नाम से परिचय देता है तथा लोक भी ऐसा ही समझने लग गये हैं। पर पहले अमुक वर्णकी संतति होने से उसे उसी वर्ण का, माना जाय, यह बात नहीं था, उसके कर्तव्य के अनुसार उसे विशेष 'वर्ण' के अंतर्गत करके पुकारते

थे। इस व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण शूद्र तक हो सकता था और शूद्र ब्राह्मण तक।* उत्तराध्ययन के २५वे अध्याय मे 'वर्णाश्रम' के लिये ऐसा कथन है—

> कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
> वइस्सा कम्मुणो होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ ३३ ॥

अर्थात् कर्म के अनुसार ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र होता है।

ब्राह्मण को ब्राह्मण कर्म, क्षत्रिय को क्षत्रिय कर्म, वैश्य को वैश्य कर्म और शूद्र को शूद्र कर्म करने की व्यवस्था योग्यतानुसार ग्रंथों में बतलाई है। इसका मतलब यह नहा है कि जैसे ब्राह्मण का कर्म विद्याध्ययन करना है और क्षत्रिय का वीरता रखना, पर ब्राह्मण में वीरता न होनी चाहिये और क्षत्रिय में विद्या का अभाव होना चाहिये। वैश्य का काम व्यापार करना है और शूद्र का सेवा, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वैश्यकी स्त्री को कोई दुष्ट उड़ा ले जाता है तो भी वैश्य को वीरता कर के न बचाना या हम शूद्र बन जायेंगे इसलिये किसीकी सेवा न करें।

मित्रों! याद रखिये हरेक मनुष्य मे चारों गुणों की जरूरत है। प्रश्न उठाया जाता है कि तब वर्णाश्रम कैसा? इसका उत्तर यह है कि हरेक मनुष्य हरेक कार्य में पूर्ण प्रमाण नहीं होता, इसलिये जिसमें जिस गुणकी विशेषता हो उसेही उस कार्य के योग्य समझने चाहिये।

हमने उच्छृंखलता शब्द का ऊपर प्रयोग किया था। वर्णसंकर कार्य उसी उच्छृंखलता का फल है। और भी अनेक प्रकार की उच्छृंखलताएँ मनुष्यों में बढ़ रही हैं। १२ व्रत धारण करने पर हानिकर

---

* शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।

ये उच्छ्रृंखलताएँ दूर करनी होंगी। उच्छ्रृंखलता अभिमान की पुत्री है। १२ व्रतधारी को व्यर्थ का अभिमान दूर करना होगा और जब अभिमान दूर हो जायगा तो फिर उच्छ्रृंखलता भी अपने आप नष्ट हो जायगी।

उच्छ्रृंखलता उस अभिमान की पुत्री नहीं है, जिसे विद्वान् लोग **स्वाभिमान** या धर्मयुक्ताभिमान के नाम से पुकारते हैं। **स्वाभिमानी** में उच्छ्रृंखलता नहीं होती। उच्छ्रृंखलता उसीमें होती है जो मिथ्याभिमान का शिकार बना हुआ है। मिथ्याभिमान और स्वाभिमानमें उतना ही अन्तर है जितना आकाश और पाताल में, या दक्षिण ध्रुव और उत्तर ध्रुवमें।

जहाँ मिथ्याभिमान धर्मको ठोकर मारता है वहाँ स्वाभिमान धर्म के लिये बलिदान होजाता है। जहाँ मिथ्याभिमान कर्तव्यसे पराङ्मुख होता है वहाँ **स्वाभिमान** उसे हृदयके सिंहासन पर विराजमान करता है जहाँ मिथ्याभिमान विलासके लिये चरण चूमता फिरता है वहाँ **स्वाभिमान** अपने नेत्र के थोड़ेसे इशारेसे उसे अपना गुलाम बना देता है मिथ्याभिमान जहाँ थर थर कांपता है, **स्वाभिमान** वहीं पैर जमाकर उसपर विजय प्राप्त करता है।

मिथ्याभिमान जीवनका अपकर्ष और स्वाभिमान उत्कर्ष करने वाला है।

मिथ्याभिमान के कारण लोग अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने की उमंग रखते हैं। देखते हैं कि इसी के वशीभूत होकर कई लोग हरेक कार्यमें शक्तिसे अधिक अपव्यय करते हैं। वे समझते हैं कि इस कृत्यसे लोगोंपर हमारा छाप पड़ेगा और हम प्रतिष्ठा के पात्र माने [illegible]। उनका यह कृत्य भोले लोगोंकी आंखों के सामने कुछ दिनोंके

लिये चका चौंध पैदा कर सकता है पर अधिक दिनोंतक नहीं। समय आनेपर नग्नसत्य दिखलाई देता है और लोगोंकी नजरोंसे वे इतने गिर जाते है कि जिसका अनुमानभी नहा किया गया था।

मित्रो ! मिथ्याभिमान में उद्दडता रहता है इसीलिये मिथ्याभिमानी मनुष्य समझता रहता है कि 'हम चौडे और बाजार सकडा।' इसी मनुष्य का यह विश्वास जब सीमा पार पहुच जाता है तब वह मुहके बल ऐसा गिरता है कि सम्हलना मुश्किल हो जाता है।

मिथ्याभिमानी अपनाही पतन नहीं करता पर भाले भाले लोगोंके उत्तेजन का कारण बनकर उनका भी पतन कराने में सहायक होता है।

वे भोले लोग, जो झूठ बोलने में हिचकिचाहट लाते थे, इन्हींके ससर्ग से अब इसको अपने उत्थान का कारण मानने लगते है। जिनको विश्वासघातके नामसे चिढ थी वे अब इन्हा के कारणसे इसी के अनन्य भक्त बन जाते हैं।

मित्रो ! स्वाभिमान में यह बात नहीं होती। मिथ्याभिमान में जहाँ उद्दडता थी वहाँ इसमें नम्रता होती है।

नम्रतामें अजब आकर्षण शक्ति होती है। यह हरेकको अपनी तरफ खेंच लेती है। और लोगोंके पाससे यह वह काम कर दिखलाती है जिसके लिये दूसरे कई प्रयत्न करनेपर भी सफलता नहीं मिलता थी।

शास्त्रमें जितने उच्च श्रावक हुए हैं यदि उनकी उन्नतिका कारण आप गहरे में पैठकर देखेंगे तो पता लगेगा कि इनकी उन्नतिका मुख्य कारण नम्रता था।

प्यारे भाईयों ! आप लोगोंका यह विश्वास कि 'व्रती श्रावक बनने में कठिनता है' इसका मैंने कुछ निराकरण किया। इसपरसे आप समझ गये होंगे कि व्रतोंके पालने में कठिनता वैसी नहीं है

जैसी हम आप समझ रहे है। विशेष विश्वास आपको तब हो जायगा जब कि आप क्रमश: १२ व्रतोंका खुलासा सुन लेंगे।

एक बात आपको शायद और खटकती होगी और व्रतोंका खुलासा करनेपर भी शायद खटके। वह यह कि जब व्रत इतने सुगम है इनके पालने में कोई कठिनता नहीं दिखती तब लोग इनको क्यों नहीं पालते?

मित्रों! आप जिसको अच्छा समझ गये आपके हृदयने जिसका अनुमोदन कर दिया, उसके प्रति ऐसी शका उठाना ही व्यर्थ है।

मित्रों! जिस कार्यकी अनुमोदना हृदय कर लेता है, उसे कार्यमें शाघ्र परिणित करना श्रेयस्कर माना गया है। इतनेपर भी आपको उस कार्य की साधनामें कठिनता और कष्ट प्रतीत होते हैं वे उस कार्य में नहीं है किन्तु आपके मनमें हैं। यदि आप उनकी ओर से अपना मनोभाव बदल डालेंगे तो टेढा मार्ग झटपट सीधा दिखाई देगा और कठिनता सुगमतामें परिणित हो जायगी।



सब जीव सुख चाहते हैं.

मनुष्य प्राणी संसार के तमाम जीवोंसे महाबुद्धिशाली माना गया है। यह प्राणी स्व-पर का जितना ज्ञान कर सकता है उतना और कोई भी प्राणी नहीं कर सकता। जिस प्रकार यह अपने सुख दुःख का ज्ञानी होता है उसी प्रकार उसमें यह भी ताकत है कि यह दूसरे प्राणियों के सुख दु खों का ज्ञान प्राप्त कर सके।

वैसे तो हरेक मनुष्य को यह ज्ञान किसी अवस्था तक प्राप्त है पर सर्वांश से उन्हीं महापुरुषोंको होता है जो तीर्थंकर तथा सर्वज्ञ कहे जाते हैं। साधारण मनुष्य ज्यादा से ज्यादा अपनी चक्षुइन्द्रिय आदि की स्थूल शक्ति जहाँतक काम कर सकती है वहाँ तक किसी वस्तुके बारेमें ज्ञान प्राप्त कर सकता है पर तीर्थंकर या सर्वज्ञ कहे जानेवाले महापुरुषों में वह शक्ति होती है कि दृष्ट अदृष्ट तमाम वस्तुओंकी अर्थात् जीव अजीवकी अन्त तक की असलियतका ज्ञान रखते हैं।

यह तो आप जानही गये होंगे कि जीव अजीव कहनेसे ससार की तमाम वस्तुओंका ग्रहण हो जाता है। तीर्थंकर प्रभु व सर्वज्ञोंने हमें ज्ञान कराया है कि 'समस्त जीव सुखके अभिलाषी हैं, कोई भी दु खको पसद नहीं करता।'

ससारके जीवोंकी इतनी प्रकारकी जातियें हैं कि हम उनकी गिनती नही कर सकते। अतएव प्रभुने हमें इन तमाम जीवोंके मोटे पाच भाग कर सबका बोध करा दिया है। वे पाच भाग ये हैं –

'एकेंद्रिय, बेंद्रिय, तेंद्रिय, चौरेंद्रिय और पचेंद्रिय।'

अर्थात् एक इंद्रियवाले जीव, दो इन्द्रियवाले जीव, तीन इंद्रिय-वाले जीव, चार इन्द्रियवाले जीव, और पांच इन्द्रियवाले जीव।

पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजसकायिक वायुकायिक, और वन स्पति आदिको जिसके केवल स्पर्श इन्द्रिय होती उनको एकेन्द्रिय जीवोंमें गिनती है।

जिसके स्पर्श और रसेन्द्रिय हो उनको वेन्द्रिय जीवोंमें गिनता है। जैसे कृमि आदि।

जिसके स्पर्श, रस, घ्राण इन्द्रिय हो उनको तेन्द्रिय जीवोंमें गिनती है। जैसे चीटी आदि।

स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु इन्द्रिय हो उनको चौरेन्द्रिय जीवों में गिनती है। जैसे मक्खी आदि।

मनुष्य योनि, तिर्यंच, देवयोनि जिनके स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र हो उनको पचेन्द्रिय जीवोंमें गिनता है।

जल में जीव है यह बात आज के साइंसने पूर्ण रीति से सिद्ध कर दिया है। हम आंखों से नहीं देख सकते पर वैज्ञानिकोंने यन्त्रों के द्वारा जल में, लाखों हलते चलते जीव बतलाये हैं। वैसेही खास थावर यानि के जीवों का पिण्ड है। इससे निश्चय होगया है कि जैन का सिद्धांत सत्य हा है।

जिस प्रकार कई लोग जल में जीव नही मानते वैसेही वनस्पतिमें भी नहीं मानते। पर विज्ञान के बल से अब यह सन्देह मिटता जाता है। वैज्ञानिकोंने इन में जीव होना सिद्ध कर दिया है। विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बोस का नाम आप लोगोंने सुना होगा। ये संसार के बहुत बड़ वैज्ञानिकों में गिने जाते हैं। इन का यूरोप अमेरीका आदि देशों में बड़ा मान किया जाता है। संसार के कइ धुरंधर वैज्ञानिक इन को अपना गुरु माननेमें अपना सौभाग्य समझते हैं। इन्होंने एक बार 'वनस्पति में जीव है' इस का प्रयोग बम्बईमें बतलाया था। दर्शकों

की फीस ४०) रु थी । लोकमान्य तिलक इस जलसेके प्रेसिडेण्ट थे । लोगोंकी भीड़ बहुत ज्यादा थी । ४०) टिकिट के देनेपर भी लोगोंको जगह नहीं मिलती थी । जगदीश बाबू जिस समय अपना प्रयोग दिखाने लगे उस समय सामने की लाइनमें पौधों के गमले रक्खे । उन गमलोंके आगेकी तरफ काचके बड़े बड़े तख्ते लगाये । फिर सूक्ष्मदर्शक यन्त्रको योग्य स्थान पर सजाकर उपस्थित जन समुदायसे कहा कि आप लोग सामने देखिये, मैं इन पौधोंको खुश करता हूं। इतना कह कर बोस बाबू पौधोंको इत्यादिक शब्दोंमें सम्बोधन कर उनकी तारीफ करने लगे । ज्यों ज्यों तारीफ करते गये त्यों त्यों ये पौधे जैसे किसी आदमीकी स्तुति करने पर वह आदमी खुश होता है उसी प्रकार खुश होकर फूलने लगे ! पर जब इन्होंने उनकी निंदा करनी शुरू की, खराब शब्द उनके लिये प्रयोग करने लगे तो वे पोधे मुरझाने लगे । लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ उनको निश्वास होगया कि वृक्षोंमें जीव होता है ।

बोस बाबू इतना ही करके न रह गये पर उन्होंने वृक्षोंमें स्नायु जाल है, और यह मनुष्यों की तरह स्पंदित होता है, इसको भी सिद्ध कर बतलाया ।

ये एक-दो प्रयोग ४०) रु खर्च करने पर मालूम पड़े पर आप जैन सिद्धान्त के लघुदंडक नामक एक थोकडेको सीखकर साइन्स का कितना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ।

इन वैज्ञानिकोंने जिस प्रकार वनस्पतिमें जीव सिद्ध किया है इसी प्रकार धातुओं में भी सिद्ध किया है ।

इनका साइन्स अभी अपूर्ण है। पर हमारे अरिहंतोका साइन्स बहुत बढ़ा चढ़ा है । यहा तक पहुंचनेमें न जाने इनको कितना समय लगेगा इन्होंने अभी एक अशकी खोजकी है पर हमारे शास्त्रोंने इनके शरीर

अवगाहना आदि का भी वर्णन कर दिया है। ये शास्त्र आजकल के प्रयोगोंको देखकर नहीं लिखे गये पर हजारों वर्ष पूर्व के लिखे हुए हैं।

वनस्पतिमें एक इन्द्रिय माना जाता है। यहा पर कई भाई शंका कर सकते हैं कि जब इनमें एक इन्द्रिय है, कान आदि तो है ही नहीं, फिर निंदा स्तुति का ज्ञान किस प्रकार करते होंगे?

जैन शास्त्र के 'आचारांग' 'विशेष आवश्यक सूत्र' तथा 'ठाणांग सूत्र' की टीका में इसका बहुत अच्छा खुलासा किया गया है, वहां देखना चाहिये।*

हाल के विज्ञानने वनस्पति, जल आदि में जीवोंकी सत्यता प्रगट की, पर अग्नि वायु आदि में अभीतक नहीं कर सका इससे हमको निराश न हो जाना चाहिये। कारण हम पहलेही कह चुके हैं कि यह अभी तक अपूर्ण है। सम्भव है यह अपनी इसी प्रकार की कोशिश के बल से किसी दिन इस सत्य तक भी पहुँच जाय।

प्यारे मित्रों! जब वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीव भी सुख दुःख का अनुभव करते हैं और दुःखको न चाहकर सुखको पसन्द करते हैं तब अन्य प्राणी भी यही चाहते होंगे, क्या आपको अब भी इस बातमें शंका रह सकती है?



* वहां एकेन्द्रिय जीवों के भी भावरूप पांचों इन्द्रियों का क्षयोपशम बतलाया है। उपकरण इन्द्रिय एकही होने से उन्हें एकेन्द्रिय कहा है

हिंसा किसे कहते है।

महा पुरुषों की वाणि, उनका किया हुआ वर्णन, पीछे के लोगों का मार्गदर्शक है। वह बतलाता है, अमुक काम करने से तुम्हारी हानि होगी और अमुक से लाभ।

साधारण पुरुषों से जिनमें महाशक्ति होती है उसे महापुरुष कहते है। महापुरुष बातों से नहीं होते पर उस के बनने के लिये बडी तपस्या करनी पडती है। इनके मार्ग में कई कष्ट आ उपस्थित होते हैं पर फिरभी सत्य के मार्ग से नहीं चूकते।

परीक्षा करनेवाला सोने को तपाता है, काटता है, कसौटीपर कसता है, फिर मालूम करता है कि यह सोना है या नहीं। इसी प्रकार महापुरुषों की भी परीक्षा होती है। इन के परीक्षक देवता और इन्द्र यद्यपि इनकी परीक्षा लेने आते हैं फिर भी सच्चे महापुरुषों के सामने उनकी ही परीक्षा हो जाती है।

मित्रों! महापुरुषों के अनुभवको ही शास्त्र कहते हैं। महापुरुषोंने जिस बात को बडे आत्मभोग से समझी उनके प्रताप से उन वस्तुओं का ज्ञान हम सहज से कर सकते हैं।

जैसे खेती करने वाले सब नहीं होते पर उस का लाभ सब को मिलता है, वैसे ही आत्मा का पूरा दमन किया होगा क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायों को वश किया होगा, दया की भावना रगरग में रमाई होगी, परमात्मा में लीन हो गये होंगे, 'शास्त्र' ऐसे ही महापुरुषों के फरमाये हुए हैं। ऐसे शास्त्र अपन परूप नहीं सकते पर उनका उपयोग कर सकते हैं।

आकाश में गरुड पक्षी के बराबर पतंगिया नहीं उड सकता; पर उडने का अधिकार समान है। इसी प्रकार उंचे महात्मा लोग शास्त्रों का

मंथन कर जितना लाभ उठा सकते हैं उतना अपन नहीं,
उस पतंगियों की भांति अपने हकको काम में लाना

अपने जैसे अल्पज्ञानी जावोंके लिये. यदि
अपने को ऐसा ज्ञानका

भाइयों ! आप लोग
का अनुसरण करेंगे तभी
आनन्द मिलेगा ।

किसान खेती कर अनाज पैदा
भूख मिटाता है । क्या उसी अनाजसे
महात्मा पुरुषोंने ये शास्त्र रचे हैं,
क्या अपनेको नहीं पहुँच सकता ?

' जरूर पहुँच सकता है । '।

जिस ज्ञानने उनको
रखिये यदि उनका अपन उपयोग

उन महापुरुषोंको शास्त्र प्रगट
यह यह कि ' जगतका उपकार, करना
हैं पर यह लोभ कैसा ? जैसे वृक्ष फलता

मित्रों ! क्या उन महपुरुषोंकी व्याि
नहीं नहीं, जैसे वृक्षके फल हरेकके लिये
है, उससे हरेक तिर सकता है।

आप कह सकते हैं, महाराज ! कि
चाहिये ? संसारमें जैन, वैष्णव, क्रिश्चियन
प्रचलित हैं और सभी यही कहते हैं कि
पाओगे । किस सिद्धान्त पर चलना चाहि

मथन कर जितना लाभ उठा सकते हैं उतना अपन नहीं, पर फिरभी उस पतंगियों की माफिक अपने हकको काम में लाना चाहिये।

अपने जैसे अल्पज्ञानी जावोंके लिये, यदि ये शास्त्र न होते तो अपने को ऐसा ज्ञानका लाभ कुछभी नहीं होता।

भाइयों! आप लोग शास्त्र को समझकर उनके बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण करेंगे तभी आपको उनकी (महात्माओंका) तरह आनन्द मिलेगा।

किसान खेती कर अनाज पैदा करता है। उस अनाज से वह अपनी भूख मिटाता है। क्या उसी अनाजसे दूसरोंकी भूख नहीं मिट सकती? महात्मा पुरुषोंने ये शास्त्र रचे हैं, जब उनको इससे लाभ पहुचा तब क्या अपनेको नहीं पहुँच सकता?

'जरूर पहुच सकता है।'

जिस ज्ञानने उनको आत्मस्वरूप परमात्माके दर्शन कराये विश्वास रखिये यदि उसका अपन उपयोग करेंगे तो अपनेको भी करायेगा।

उन महापुरुषोंको शास्त्र प्रगट करनेमें एक रहस्य जरूर था। वह यह कि 'जगतका उपकार करना।' इसको भी कोई लोभ कहते हैं पर यह लोभ कैसा? जैसे वृक्ष फलता है वैसा।

मित्रों! क्या उन महपुरुषोंकी वाणि अपने अकेलोंके लिये ही है? नहीं नहीं, जैसे वृक्षके फल हरेकके लिये हैं वैसेही शास्त्र हरेकके लिये है, उससे हरेक तिर सकता है।

आप कह सकते हैं, महाराज! सिद्धान्त किसका सत्य मानना चाहिये? संसारमें जैन, वैष्णव, क्रिश्चियन, मुसल्मान सभी के सिद्धान्त प्रचलित हैं और सभी यही कहते हैं कि हमारे सिद्धान्त को मानो, तिर जाओगे। किस सिद्धान्त पर चलना चाहिये।

मैं पूँछता हूँ कि मुसलमान के बनाये कपडे से आपकी लज्जा निवारण होगी या हिन्दू के बनाये कपडेसे ?

(उत्तर) ' दोनों के कपडे से । '

ब्राह्मण की खेती से पैदा हुए अन्न से आप लोगों की भूख मिटेगी और शूद्र के द्वारा की हुई खेतीसे ?

(उत्तर) ' दोनों से मिट सकती है । '

प्यारे मित्रों ! आप लोग मूल सिद्धात पर ध्यान दिया कीजिये । इससे सारी शकाए दूर हो जायेंगी । जैन हो या वैष्णव, क्रिश्चीयन हो या मुसलमान सब के सिद्धान्तों का साररूप मक्खन अर्थात् तत्व-ज्ञान लेने से जो सत्य है वह मिल जायगा ।

बडे बडे ग्रथोंमें जो बातें हैं महात्मा पुरुषोंने अपने ज्ञानके लिये थोडे शब्दोंमें उनको समझादी हैं, जैसे —

दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोडिये, जब लग घट में प्राण ॥

धर्म का मूल क्या है ?

' दया । '

दया किस लिये ? दया क्यों समझनी चाहिये ? क्या जैन शास्त्र कहता है इसलिये ? क्या वेदात या वैष्णव कहते हैं इसलिये ?

मित्रों ! यह प्रश्न और किसी से न पूछो । अपनी आत्मा से पूछो । दया आपको क्षण क्षणमें नजर आयगा और यह जरूरी है इसीलिये यह धर्मका मूल मानी गई है । इसके लिये शास्त्र के प्रमाण की कोई जरूरत नहीं ।

आपके सामने एक आदमी चमकती हुई नंगी तलवार लेकर खड़ा है वह आपको मारना चाहता है। दूसरा मनुष्य आपकी रक्षाकी चेष्टा करता हुआ उसे इस बातका उपदेश देता है कि 'प्यारे! इसको क्यों मार रहा है?' वह जवाब देता है कि 'इसे मारना मेरा धर्म है, मनुष्य की हत्या करने से पुण्य होता है, ऐसा मेरा शास्त्र कहता है।

अच्छा तो, इन दोनोंमें से आपको प्यारा कौन होगा?

'रक्षा करनेवाला।'

जो मनुष्य तलवार के द्वारा आपके जीवन का अन्त करना चाहता है, वह यह कृत्य करता तो है अपने शास्त्रके अनुसारही, पर आप उस शास्त्रको कैसा मानेंगे?

'रद्दीकी टोकरीमें डालने लायक।'

क्यों?

'इसलिये कि वह अपनी आत्माके विरुद्ध है।'

बस, आत्मा के विरुद्ध जो जो बातें हों, प्यारे मित्रों! वही अधर्म है। उनका करना पाप है। इसलिये उन कार्योंकी मनाई की गई है। महाभारत के अन्दर भीष्म पितामहने यही बात कही है—

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'

मित्रों! दया केवल मनुष्योंमें ही नहीं होती परन्तु इसका स्थूल रूप दूसरे प्राणियोंमें भी देखने में आता है। सिंहनी दूसरोंपर हमला करती है, क्या वह अपने बच्चे पर करती है?

'नहीं।'

'क्यों

' साँप काटने से मनुष्य कई बार प्राण मुक्त हो जाते हैं, क्या सभी साँप काटते हैं ? '

' नहीं । '

उनमें भी दया का किंचित भाव है नहीं तो सबको काट खाय और सब मर जाय ।

मनुष्य मनुष्य में भी दया है नहीं तो एक दूसरेको मार डाले ।

माता बच्चेको सूखेमें सुलाती है पर स्वयं गीले पर सोती है ।

क्यों ? क्या वह बच्चा जन्मता ही उसे कमा कर देता है ? या और कुछ सहायता करता है ?

' नहीं । '

तब माता ऐसा क्यों करती है ?

इसीलिये कि उसमें दया है ।

मित्रों ! दयाहीन प्राणी हिंसक, क्रूर, पापी कहा जाता है । अतः एव दया करना सबका मुख्य कर्तव्य होना चाहिये । याद रखिये दया का दूसरा नामही अहिंसा है' और अदयाका नामही हिंसा है ।

मोटी समझ से ' हिंसा ' वह कहलाती है जिस कृत्य के द्वारा किसी प्राणीके जीवनका अन्त किया जाय ।

प्रश्न उठ सकता है कि आत्मा जब अजर अमर अविकल है त्रिकालमेंभी मारने से नहीं मरती तब हिंसा कैसी ? जो वस्तु नाश नहीं होती उसका नष्ट होना कैसा ?

मित्रों ! लोगोंके विचार आज संकुचित हो रहे हैं जब इनके विचार विस्तृत हो जायेंगे तब हिंसाके सच्चे स्वरूप का ज्ञान इनमें फैल जायगा । धर्म के विषय में दुनियांमें जो कुतर्कें फैल रही हैं, अर्थमें जो खींचा

मानी की जाती है, वास्तविक ज्ञान के फैलनेपर यह सब अंधाधुंदी मिट जायगी।

भाइयों! आत्मा अविनाशी है तभी तो हिंसा लगता है। यदि इसके विपरीत आत्माकी अनात्मा बन जाती हो तो हिंसा किसे लगे? मारनेवालेकी आत्मा नष्ट होगई और मरनेवालेकी आत्मा का नाश हो गया तब तो हिंसा अहिंसाका सवालही नहीं रहा। आत्मा अजर अमर अविनाशी है, तुम्हारीही तरह दूसरोंकी है। आत्मा के पास आयुष्य कर्म है उसको अकालमें जुदा कर देना, यानी आत्मा से प्राणोंका अलग कर देना उसीका नाम हिंसा है। जैसे वासलेट तैल, जो रातभर लालटेन में जल सकता है उसको दियासलाई बतलाकर एकदम भबका कर जला डालना, उसे 'अकाल में नष्ट कर दिया' कहा जाता है। इसी प्रकार आत्मा के पास आयुष्य कर्म होते हुए भी छुरी तलवार आदि से दुःख पहुंचाकर अन्त कर देना उसे हिंसा कहते है।

मित्रों! मोटी दृष्टिसे जो हिंसा कही जाता है उसे आप समझ गये। पर जैन शास्त्र इससे भी गहरी बात बतलाता है कि किसी प्राणि को मन वचन कर्मसे किसी प्रकारका दुःख पहुंचाना हिंसा है। इससे भी गहराईके साथ कहता है कि 'करना' 'कराना' और 'किये हुएको अच्छा मानना' मनसे वचनसे और कर्मसे, वह भी हिंसाही है।

और समझिये। यदि आप किसीको गाली देकर किसीके मन दुखानेका प्रयत्न करते हैं तो समझिये कि मैं एक प्रकारकी हिंसा कर रहा हूँ। यदि आप किसीका अपमान कर रहे हैं तो भी समझ लीजिये कि मैं एक प्रकारकी हिंसा का भागी बन रहा हूं। यदि आप किसीको लड़ाई झगड़ा करनेकी सलाह देते हैं तो समझिये कि मेरा यह कृत्य एक प्रकारका हिंसा में सामिल है। इतनाही नहीं, मनसे भी किसीका बुरा समझना यह भी हिंसा है।

इन तमाम हिंसाओंके करनेवाले प्राणियोंको यथा समय बदला चुकाना पडता है।

शास्त्र में 'तदूलमच्छ' की एक जगह बात आई है। लिखा है कि तदूलमच्छ एक मगर के नाक की अणीपर समुद्र में बैठा था। यह जन्तु अगुलीके कई हजारवें हिस्सेकी बराबर होता है। एक दिन मगर मुँह फैलाकर सुख से जलमें बैठा हुआ था। सैकडों मच्छियें उसमें आतीं, और निकल जातीं। तदूलमच्छ ने सोचा कि यदि मैं मगर होता तो इनमें से एक को भी जिंदी न छोडता, सबको स्वाहा कर जाता। तदूल मच्छने उस समय किया कराया कुछ नहीं, केवल उसकी इसी पापमयी भावनासे नरक में गया और असख्य वर्षोतक दु ख उठाता रहा।

प्रिय मित्रों! जिस प्रकार मनमें किसी का बुरा चिंतवना हिंसा में गिना गया है वैसेही प्रगट रूप में किसी की निंदा करना यह भी हिंसा के बराबर है। इसके प्रमाण में महाभारत में भी एक उदाहरण मिलता है।

जिस समय अर्जुन त्रिगर्तोसे वीरता पूर्वक युद्ध कर रहे थे, उन्हें देख कर्ण ने पाण्डव सैन्य पर भयकर रूप से आक्रमण किया। दोनों ओर से अस्त्रशस्त्रों का वर्षा होने लगा। वीरोंकी हुँकार ध्वनि से आसमान गूँज उठा। कर्ण के बाण अनेकों पाण्डय सैनिकों को धराशायी करने लगे। उधर अर्जुनने त्रिगर्त-राज सुशर्मा को मार गिराया। भीमने दुर्योधन के छ भाईयोंके सदाके लिये भूशायी कर दिया। यह देख, कर्ण ने युद्धिष्ठिर पर ऐसा भयानक आक्रमण किया कि उनकी बुरी दशा हो गई। रणक्षेत्रसे भाग चले। उन्हें भागते देख, सेनाकेभी पैर उखड गये। भीम, सात्यकि और धृष्टद्युम्नने उन्हें बडे २ उत्साहवर्धक शब्दोंसे उत्साहित कर रोक रखा। फिर दोनों पक्ष में जमकर लडाई होने लगी। कर्ण के बारबार आक्रमण से भीमको बडा क्रोध चढ आया।

अभी तक नहीं मारा, यह जानकर उनका हिताहित ज्ञान लुप्त हो गया। उन्होंने बड़े क्रोध भरे शब्दोंमें अर्जुन और उनके गांडीव धनुषको धिक्कार दिया। उनकी कठोर वज्र समान वाणि अर्जुन से न सही गई, वे खड्ग लेकर अपने परम पूज्य भाईको मारने के लिये तैयार होगये। जिनके नेत्रोंके इशारे मात्र पर ये संसारको न्यौछावर कर देने के लिये सदा प्रस्तुत रहते थे तथा जिनकी आज्ञाका पालन करते हुए संसार में जहाँ तक कष्ट और दुःखकी पराकाष्ठा है, वहाँतक उठा चुके थे और उठा रहे थे। समय भी क्या ही विचित्र परिवर्तन-शील रहे है! अबोध मनुष्य के मन का कैसा रंग बिरंगा व्यवहार है!!

अर्जुन को इस प्रकार दुष्कृत्य करते देख, कृष्णने झटपट उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—

"अर्जुन! तुम यह कैसी मूर्खता कर रहे हो? क्या तुम्हारी बुद्धि मारी गई है? जो युधिष्ठिर तुम्हें पुत्र के समान प्यार करते हैं, जिनका तुमने आज तक कभी अनादर नहीं किया, उन्हीं को मारने के लिये तैयार हो रहे हो? जरा सोचो तो सही क्या युधिष्ठिरके मारने पर तुम जीवित रहना पसन्द करोगे? क्या बड़ों की मान प्रतिष्ठा का तुम्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहा? मालूम होता है कि तुम पागल हो गये हो।

श्रीकृष्ण की बातें सुन, अर्जुन के सिर से तत्काल क्रोध का भूत उतर गया। वे लज्जित होकर सिर झुकाये खड़े हो रहे। कुछ देर के बाद हाथ जोड़कर कहने लगे—'भगवन्! आपने ठीक कहा। मेरी बुद्धि सचमुच मारी गई थी, परन्तु मैं लाचार था। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो मेरे इस गांडीव धनुष की निंदा करेगा, उसे मैं तत्काल मारूँगा। भाई साहबने इसका कुछ भी विचार न कर मेरे धनुष्यको धिक्कारना आरम्भ कर दिया, इसीलिये मैं भी क्रोध के मारे अंधा हो गया। यदि

वे मुझे लाख गालियां देते, तो भी मैं कुछ न बोलता। उनकी गालियाँ झिडकियाँ और धिक्कारों को मैं आशीर्वाद समझता हूं। अब आपही कहिये, पूज्य भ्राता के ऊपर हाथ उठाकर मैंने जो महापाप किया है उसका प्रायश्चित क्या है? मुझ तो आत्मघात ही एक मात्र प्रायश्चित मालूम होता है। अब मैं [illegible] अधम शरीर को न रक्खूंगा।"

यह कह कर अर्जुन ने ज्योंही अपनी गर्दन तलवार से उड़ा देनी चाही, त्योंही श्रीकृष्णने खड्ग समेत उनका हाथ पकड़ लिया और खड्ग को छीन कर दूर फेंक दिया।

अर्जुन की इस धर्मशीलता से धर्मराज युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए— उनके मनमें जो थोडा बहुत ग्लानि पैदा हुई थी, वह मिट गई। उन्होंने अर्जुन को स्नेह पूर्वक आलिंगन करते हुए कहा—

'प्यारे पार्थ! भाई अर्जुन!! मैं वास्तव में दोषी हूं। तुम्हारा क्रोध अन्याय युक्त नहीं था। मैंने व्यर्थ ही में तुम्हारी तथा तुम्हारे गांडीव धनुष की निंदा की, तुम अपनी प्रतिज्ञा पालन करो। क्षत्रिय प्रतिज्ञा भ्रष्ट कभी नहीं होता।'

इतना कह युधिष्ठिर ने अपनी गर्दन आगे कर दी।

अर्जुन असमंजस में पड़ गये। एक तरफ धर्म संकट, और दूसरी तरफ गांडीव धनुष की प्रतिज्ञा!

श्रीकृष्ण—अर्जुन! श्रेष्ठ पुरुष का अपमान करना उनकी मृत्यु के बराबर है इसलिये यद्यपि तुम्हें बड़े भाईका अपमान न करना चाहिये पर इस समय इनका अपमान करो यह इनके मृत्यु बराबर होगा।

श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन उनके चरणों में झुक पड़ा और बोला—वाह मुरारि, आपके बिना ऐसी सलाह कौन देता? आज मैं

धर्मराज की घात कर देता पर धन्य है आपकी बुद्धिको, सच्चा रास्ता बतला दिया, पर बड़े भाई का अपमान कैसे करूं ?

कृष्ण—नहीं, सिर्फ एक अपमान जनक वचन कह दो ।

अर्जुन—(युधिष्ठिरसे) आप बड़े भाई होकर मेरे गांडीव धनुष का अपमान किया

कहते कहते अर्जुन की आखों में अश्रु प्रवाह होने लगा, धनुष फैंक दिया और नत मस्तक होकर क्षमा मॉंगी ।



हिंसा के कारण।

प्रिय मित्रों! हिंसा किन किन कारणों से होती है इसका विवरण शास्त्र में आया है। यदि उन तमाम कारणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाय तो बहुत समयकी जरूरत है अत संक्षेप में बतलाया जाता है।

संसार में करोडों ऐसे प्राणि विद्यमान हैं, जो हमें दृष्टिगत नहीं होते। उनका पुंज हमारे शरीर के चारों तरफ चक्कर काटता है पर हम उन्हें देख नही सकते। ऐसे प्राणियोंकी हिंसा, अनजान में चलते, फिरते, उठते, बैठने, श्वासलेते, किसी वस्तु को इधर उधर रखते एव आग जलाते समय हो जाती है।

चींटी आदि जिन प्राणियों को हम आंखोंसे देख सकते हैं, उनकी भी प्राय अनजान में इसी प्रकार हिंसा हो जाती है। रहे बडे प्राणी, उनकी हिंसा मनुष्य क्यों करता है? इसके उत्तर में शास्त्र कहता है कि कोई मांसके लिये, कोई हड्डियों के लिये, कोई चमडे के लिये, कोई चर्बी के लिये, कोई दांतों के लिये, कोई रक्तके के लिये, कोई बालोंके लिये इसी प्रकार और भिन्न भिन्न स्वार्थों के कारण बिचारे पशुओंकी हिंसा का जाती है।

किसी वस्तुको सडा कर उसका कोई पदार्थ तैयार करना यह भी एक हिंसाका कारण है। क्यों कि सडानेपर उस वस्तुमें सैकडों सूक्ष्म जीव पैदा होते हैं। जैसे शराब आदि। ऐसी चीजें काम में लानेवाले उन जीवों की हिंसा के कारण बनते हैं तथा उन जीवों के मरने पर दुर्गंधि आदि फैलकर जो रोगादि फैलते है यह भी हिंसा का ही साधन माना गया है।

हिंसाके भेद
और
पहले व्रत का सूत्रपाठ से विस्तार।

सूत्र—थूलग पाणाइवाय समणोवासओ पच्चखाइ, से पाणाइवाए दुविए पन्नत्ते, त जहा-संकप्पओ अ आरम्मओ अ, तत्थ समणोवासओ-सकप्पओ ; जावज्जीवाए पच्चक्खाइ, नो आरम्भ ओ।।

टीका—द्विन्द्रियादयः स्थूलत्वं चैतेषां सकललौकिक जीवत्व् मसिद्धे , एतदपेक्षयैकेन्द्रियाः (णा) सूक्ष्माधिगमेना (न) जीवत्व सिद्धेरिति, स्थूला एव स्थूलकास्तेषा भाणा —इन्द्रियादय' तेषा- मतिपातः स्थूलमाणातिपात त श्रमणोपासक श्रावक इत्यर्थः मत्यारव्याति, तस्माद् विरमत इति भावना। स च माणातिपातो द्विविध मज्ञप्त तीर्थंकर गणधरैर्द्विविधः मरूपित इत्यर्थ 'तद्यथे'- त्युदा हरणोपन्यासार्थं , सकल्पजश्चारम्भजश्च, सकल्पाज्जात- सकल्पजः, मनस सकल्पाद् द्वीन्द्रियादिमाणिन मांसास्थि- चर्मनखवालदन्ताद्यर्थं व्यापादयन्तो भवति, आरम्भाज्जातः आरम्भज तत्रारम्भोहलदताखननस्तव (लवन) मकारस्तस्मिन् शख चदणकपिपीलिकाधान्यगृहकारकादि सघट्टन पारितापद्राव लक्षण इति, तत्र श्रमणोपासक' संकल्पतो यावज्जीवयापि मत्या- ख्याति, न तु यावज्जीवयैव नियमत इति, 'नारम्भज' मिति, तस्या- वश्यतयाऽऽरम्मसद्भावादिति, आह—एव सकल्पत किमिति सूक्ष्म माणातिपातमपि न भत्याख्याति ? उच्यते एकेन्द्रियादि मायो दुष्परिहारा सग्रवासिनां सकल्पैव सचित्त पृथ्व्यादि परिभोगाव्।

भावार्थ—सकल आबालवृद्ध पुरुष द्वारा प्रसिद्ध जो द्वीन्द्रियादि जीव उनका 'स्थूल' शब्दसे यहां ग्रहण होता है। उसकी अपेक्षा सूक्ष्मबुद्धिसे जानने योग्य एकेन्द्रिय जीवको लौकिकमें जीवपनेसे प्रसिद्ध नहीं इसलिये उनको सूक्ष्म कहा है। अतएव लौकिक प्रसिद्ध जो स्थूल जीव उनका जो इन्द्रियादिक प्राण उसका नाश करना उसको स्थूल प्राणातिपात कहते हैं। उसको श्रमणोपासक श्रावक त्यागता है अर्थात् उस स्थूल हिंसासे निवर्तता है। वह प्राणातिपात तीर्थंकर गणधर भगवान्ने दो प्रकारका बतलाया है। वह इस तरह है—एक संकल्पज और दूसरा आरम्भज। संकल्पमें पैदा होनेवाले अर्थात् मनके संकल्प द्वारा द्वीन्द्रियादिक प्राणियोंको मांस, हड्डा, चर्म, नख, केश, दांत आदिके वास्ते मारना उसे संकल्पज कहते हैं। और आरम्भसे पैदा होनेवाले अर्थात् हल दंताली आदि से पृथ्वी खोदने आदि आरम्भमें शंख चंदणक (जीव विशेष) चींटी आदि धान्य निष्पत्तिकरण अथवा घर बनाने आदिमें संतापना विराधना होता है उसको आरम्भज कहते हैं। इन दोनों हिंसाम से श्रमणोपासक श्रावक संकल्पज हिंसाका यावज्जीवनका भी त्याग करता है परंतु कोई अल्पकालका भी कर सकता है। हां, आरम्भजा हिंसाका त्याग श्रावकको सम्पूर्ण रीतिसे नहीं होता है। क्योंकि इसको गृहकार्यमें उस हिंसाका सद्भाव होनेसे। यहां कोई शंका करता है कि जैसे संकल्प से स्थूल प्राणातिपात का त्याग करता है वैसे ही सूक्ष्म प्राणातिपातका भी त्याग क्यों नहीं करता? उत्तर है—गृहवासियोंको एकेन्द्रियोंकी हिंसा प्राय दुष्परिहार है क्यों कि वह संकल्प के द्वारा भी पृथ्वी आदिका परिभोग करता है।



पहले (अहिंसा) व्रत के अतिचार.

सूत्र–थूलग पाणाई वायवे रमणस्स समणोवासएण इमे पच अइयारा जाणियव्वा तजहा-बधे वहे छविच्छेदे ए अइभारे भत्त-पाण वुच्छेए।

(टीका)—अतिचार रहितमनुपालनीय, तथा चाह-'थूलगे'त्यादि, स्थूलक प्राणातिपात विरमणस्स विरतेरित्यर्थ श्रमणोपासकेनामी पञ्चाति-चारा 'जाणियव्वा' ज्ञपरिज्ञया न समाचरितव्या —न समाचरणीया, तद्य-थेत्युदाहरणोपन्यासार्थ, तत्र बधन बध —सयमन रज्जुदामनकादिभि-र्हनन बध ताडन कसादिभि छविः शरीर तस्य छेद पाटन कर पत्रा-दिभि भरणभार अतीव भरण अतिभार प्रभूतस्य पूगफलादे स्कन्ध पृष्ठ्यादिष्वारोपणमित्यर्थ भक्तअशनमोदनादिपान—पेयमुदकादि तस्य च व्यवच्छेद निरोधोऽदानमित्यर्थ एतान् समाचरन्नति प्रथमाणुव्रत तदनाय तस्य विधि—

बन्धो दुविधो—दुप्पदाण चतुप्पदाण च, अट्ठाए अणट्ठाए य, अणट्ठाए न वट्टति बधेतु, अट्ठाए दुविधो—निरवेक्खे सावेक्खो य, णिरवेक्खो णेच्चन्य सघणित ज बधति सावेक्खो ज दाम गठिणो ज व सक्केति पलीवणगादि सु मुचितु छिंदितु वा तेण ससरपासएण बन्धे वन्ध एव ताव चतुप्पदाण, दुपदाणपि दासो वा दासी वा चोरो वा पुत्तो वा ण पढतगादि जति वज्झति तो सावेक्खाणि बधितव्वाणि रक्खितव्वाणि य जधा अग्गिभया-दिसु ण विणस्सति ताणि किर दुपदचतुप्पदाणि सावगेण गेण्हि तव्वाणि जाणि अबद्धाणि चेव अच्छति, वहो तधा चेव, वधोणाम ताळणा अणट्ठाए, णिरवेक्खो णिरवेक्खो णिद्दय ताळेति, सावे-क्खो पुण पुव्वमेव भीतपरिसेणहोतव्व, मा हणण कारिज्जा,

जति करेज्ज ततो मम्म मोत्तूण ताये लताए दोरेण वा एक्कं दो तिण्णिवारे हत्थपाद कण्णणक्काइ णिद्दयत्ताए छिंदति, सावेक्खो गंड वा अरुयं वा छिंदेज्ज वा डहेज्ज वा, अतिभारो ण आरोवेतव्वो, पुव्वं चेव जा वाहणाए जीविया सा मोतव्वा, ण होज्जा अण्णा जीविता ताधे दुपदो जं सयं उक्खिवति उत्तारेति वा भारं एवं वहाविज्जति, बइल्लाण जधा सामाविया ओ वि भाराओ ऊणओ कीरति, हल सगडे सुवि वेळाए मुयति, आसहत्थी सुवि ए विही, भत्त पाण वोच्छेदो ण कस्सइ कातव्वो, तिव्व छुहो मा मरेज्ज, तहेव, अणट्ठाए दोसा परिहरेज्जा, सावेक्खो पुणरोग णिमित्त वा वायाए वा भणेज्जा अज्ज तेण देमित्ति, संतिणिमित्त वा उववास करावेज्जा, सव्वत्थावि जतणा जधा थूलग पाणाति वातस्स अतिचारो ण भवति तथा पयतितव्वं, णिरवेक्खस्स वधादि सु लोगो य घातादिया दोसा भाणियव्वा ।*

---

* बन्धो द्विविधा—द्विपदानां चतुष्पदानां च अर्थायाऽनर्थाय च, अनर्थाय न वर्तते बन्धु, अर्थाय द्विविध निरपेक्ष सापेक्षश्च, निरपेक्षो यन्निश्चलं बध्नाति वाढ, सापेक्षो यद्दामग्रन्थिना यच्च शक्नोति प्रदीपनकादिषु मोचयितुं छेत्तुं वा तेन संसरणपाशकेन बद्धव्य, एवं तावत् चतुष्पदानां, द्विपदानामपि दासो वा दासी वा चौरो वा पुत्रो वाऽपठनादिर्यदि बध्यते तदा सापेक्षाण्येव बद्धव्यानि रक्षितव्यानि च यथाऽग्निभयादिषु न विनश्यन्ति, ते किल द्विपदचतुष्पदाः श्रावकेण ग्रहीतव्या येऽबद्धा एव तिष्ठन्ति, वधोऽपि तथैव, वधो नाम ताडनं अनर्थाय निरपेक्षो निर्दयं ताडयति सापेक्षः पुनः पूर्वमेव भीतपर्षदा भवितव्य मा भक्त कुर्यात्, यदि कुर्यात् ततो मर्म मुक्त्वा तदा लतया दवरकेण वा एकशो द्विस्त्रिर्वारान् ताडयति, छविच्छेदोऽनर्थाय तथैव निरपेक्षो हस्तपादकर्ण नासिकादि निर्दयतया छिनत्ति, सापेक्षो गण्डं वा अरुर्वा छिन्द्याद्वा दहेद्वा अतिभारो नारोपयितव्य पूर्वमेव या वाहनेनाऽऽजीविका सा मोक्तव्या, न भवेदन्या जीविका तदा द्विपदो यं स्वयमुत्क्षिपति उत्तारयति वा भारं एवं वाह्यते, बलीवर्दानां यथा स्वाभाविकादपि भारादून क्रियते, हलशकटेष्वपि वेलायां मुञ्चति अश्वहस्त्यादिष्वप्येष एव विधि, भक्तपानव्यवच्छेदो न

पहला व्रत अतिचार रहित पालन करना चाहिये।

स्थूल प्रणातिपात से निवर्तनेवाले व्रतधारी श्रावकको पच अतिचार जानने योग्य है परतु आचरण करने योग्य नहीं हैं।

पच अतिचार ये हैं—(१) बधन, (२) वध, (३) छविछेद, (४) अतिभार, (५) भक्तपाणि विच्छेद।

किसी रस्सी आदि से बांधना उसे 'बधन' कहते हैं।

चाबुक आदि से मारना उसे वध कहते हैं।

करोत आदि शस्त्रों से शरीर को फाडना उसे 'छविछेद' कहते हैं।

सुपारी नारीयल आदि भारको पशुके कधे, पीठ आदिपर शक्तिसे ज्यादा भरना उसे 'अतिभार' कहते हैं।

'भक्त' याने ओदन आदि खाने की चीज, और पाण याने पानी आदि तृषा मिटानेकी वस्तु, उसका विच्छेद कर देना अर्थात् भातपानी न देना, उसे 'भक्तपाणिविच्छेद' नामक अतिचार कहते हैं।

अतिचारो का विस्तृत भावार्थ।

बध दो तरहके हैं। दो पदों (मनुष्यादिकों) का और चौपदों (गौ आदि) का। उसके भी दो भेद—अर्थ से बांधना और अनर्थ से बांधना। अनर्थ से वर्जित करें। अर्थ के दो भेद—निरपेक्ष और सापेक्ष। निरपेक्ष उसे कहते हैं जो अति गाढा बांध लगा दिया जाय। इसे अतिचार

कस्यापि कस्त्र च तीव्रवुन्मा म्रियेत, तथैवानर्थाय दोषान् परिहरेत्, "अन र्थाय' इत्येतस्य पदस्य दोषान्–अनर्थाय दोषान्" सापेक्ष पुन रोगनिमित्त वा घाया वा भवान्–अद्य तुभ्य न ददामीति, शान्तिनिमित्त चोपवास कारयेत्, सर्वत्रापि यतना यथा स्थूलप्राणातिपातस्यातिचारो न भवति तथा प्रवर्ति ॥ य, निरपेक्षवधादिषु च लोकोपघातादयो दोषा भणितव्या ॥ इति ॥

कहते हैं। सापेक्ष उसे कहते हैं जो डोरा आदिसे गाठ ऐसी देवे जिसको अग्नि आदिके लगनेपर शीघ्रतासे खोल सके। यदि बाधना ही तो ढुलवा गाठ से नहा बावे। यह चतुष्पाद की विधि है। द्विपदों में दासदासी चोर पुत्र आदि को सुधारने के लिये बाधे तब भी निरपेक्ष न बावे। उसका रक्षा करे। जिस से अग्नि भयादि से उसका नाश न होजाय।

श्रावक के लिये ऐसे दो पदों तथा चतुष्पदों को रखने में विशेष सुविधा होती है जो बिना बाधे ठहर सके।

(२) 'बध' को ताडनभी कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है अर्थ से और अनर्थ से। निर्पेक्षतासे दया रहित जो ताडन किया जाता है उससे अतिचार होता है। और सापेक्षताने ऐसा विचार करे कि-ये पशु आदि किसीका घात न कर डाले। यदि किसी का नुकसान करता हुआ दिखाई दे तो मर्मस्थान को बाधा पहुँचे ऐसा ताडन न करे।

(३) 'छविछेद' भी अनर्थ के लिये तथा निरपेक्ष से हाथ पाँव कान नासिकादि का निर्दयता से छेदने को अतिचार कहते हैं। सापेक्षता से बीमारी की गांठ मस्सा आदि को छेदन करने से अथवा दाग (डाम) देने में अतिचार नहीं माना गया है।

(४) अतिभार न भरना चाहिये। और पशुओंपर बोझ लादनेकी आजिविका भी न करे। यदि दूसरी आजीविका न हो तब द्विपद (मनुष्यादि) स्वय जिस भार को उठा सके या रख सके ऐसे से अधिक न भरे। बैल आदि पर स्वाभाविक भार से अधिक न भरे। हल गाडा में भी नियत समय से ज्यादा न जोते। हाथी घोडे आदि की भी यही विधि समझनी चाहिये।

(५) भात पाणी से किसी प्राणी का विच्छेद न करे। क्यों कि कई एक तीव्र क्षुधा तृषा आदि से मर जाते हैं। इससे अनर्थ दोष

पैदा होते हैं इसलिये इसे त्यागे। सापेक्षता से रोग के निमित्त अथवा भय दिखाने के लिये मुंह से कहे 'आज तुझे खाने को न दूंगा' तथा रोगादि की शांति के लिये उपवास करावे इन सब कामों में ऐसी यत्ना रक्खे जिससे स्थूल प्रणातिपात में अतिचार न लगे ऐसे प्रयत्न करे। निर्पेक्ष वधादिक में लोकोपवाद के भी बहुत दोष है उसको भी ध्यान में रक्खे।*

*विशेष विचार आगे के पेजों में देखिये।

अतिचारोंकी विशेष व्याख्या.

पहला 'वध' नामक अतिचार आया है। वध के दो भेद होते हैं। एक तो दो पद को बांधना और दूसरा चौपदको बांधना। दास दासी नौकर चाकरोंका गिनती दो पदमें है और हाथी घोडा गाय आदिकी चौपदमें। ये दो कारणोंसे बांधे जाते हैं, जैसे-अट्ठाये अनट्ठाये-अर्थ के लिये और अनर्थके लिये। किसीको बिना मतलब बांधना और उसे कष्ट देना, उसका कुदरती चालको रोक देना, यह एक प्रकारकी हिंसा है। श्रावकको चाहिये कि इससे बचे।

अट्ठाये अर्थात् अर्थसे बांधना। इसके दो भेद हैं निरपेक्ष और सापेक्ष। निरपेक्ष उसे कहते हैं जो लापरवाही से बांधा जावे, ऐसा बांधा जावे कि वह अपने हाथ पैर भी न हिला सके। ऐसा बांधना श्रावकका धर्म नहीं है। दूसरा बांधना है सापेक्ष, मतलब के लिए करुणायुक्त जो बांधा जावे उसे सापेक्ष कहते हैं। शास्त्र कहता है कि पशु आदिको करुणाभाव से इसप्रकार न बांधे कि उन्हें दुःख हो। मौके बे-मौके जैसे लाय (अग्निकांड) आदिमें जल्दी खोला जा सके।

दोपद--दास दासी यदि उदण्डता करते हों उनको सुधारने के लिये बांधना यह सापेक्ष बांधना है। चोरको चोरी करने की सजा याने चोरी की आदत मिटाने के लिये बांधना यह भी सापेक्ष है। इसीप्रकार पुत्रको पढनेके लिये बांधना यह भी सापेक्ष है।

मैं पहले कई बार कह चुका हूँ कि यह धर्म राजाओं के मुकुट पर रहनेवाला है।

राजा इस धर्मको धारण कर सकता है। जो राजा इस धर्म को करेगा उसका फर्ज होगा कि प्रजा के कल्याण के लिये अन्यायियों

को दण्ड दे, चोरोंको बांधे और मौका आ पडे तो जुल्मी को सजा भी दे। गुस्से में आकर नहीं, पर न्यायसे अभियुक्तकी पूरी जाँच कर यदि यथार्थ में दोषी हो और उसके जीनेसे प्रजाको महान् कष्ट पहुचनेकी, शांति भंग की पूरी संभावना हो तो उसे फाँसीकी सजा देना यह भी साक्षेप में गिना जायगा।

वैसे तो राजा फांसीकी सजा दे सकता है पर जिन्हें केवल बंधन की ही सजा दी गई है उसके भरण पोषणमें कभी दुष्टताका परिचय न देना चाहिये। राजा का कर्तव्य है कि उसकी भूख प्यास तथा अन्य शारीरिक बाधाएं न रुके इसकी तरफ ध्यान रखता रहे। इतने दिन तो उसकी जिम्मेवारी उसीके उपर थी पर अब उसके जीवन की जिम्मेवारी राजा पर है। यदि उसे किसी प्रकारका न्याययुक्त कानूनी कष्ट के सिवाय कष्ट भोगना पडेगा उसका पाप राजाके सिर पर होगा। जो राजा इस बातका ध्यान न रखेगा उसका दोष राजा के ऊपर तो होगा ही पर उसका राज्य भी दोषी हो जायगा।

मित्रों ! यह बात तो हुई द्रव्य बंधनकी। ऐसाही भाव बंधन के लिये समझ लेना चाहिये। अर्थात् जातिके बंधन रीति रिवाज ठहराव कानून ऐसे न हो कि बिचारे गरीब कुचल कुचल कर रिब-रिबकर मर जावें। यदि आप अपनी समाज में अन्याय युक्त कानूनों का प्रचार न करेंगे और जो अभी प्रचलित कितने ही विपरीत कानून हैं उनको ठुकरा देंगे तो आपकी समाजमें रामराज्य-सा आनंद फैल जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

पहले अतिचारका कुछ विचार हुआ अब दूसरे अतिचार वध (हनन) पर विचार किया जाता है। इसके दो भेद होते हैं। एक 'अनर्थ,' दूसरा 'सर्थ'। रास्ते चलते हुए बिना कसूर किसी मनुष्य

या पशुको डण्डे आदि से चोट पहुंचाना अनर्थ में गिना जाता है। अर्थ 'हनन' के दो भेद हैं। एक सापेक्ष और दूसरा निरपेक्ष। दया रहित होकर अग उपांग के चोट पहुंच जाने का विचार न कर जो चोट पहुंचाई जाती है उसे निरपेक्ष कहते हैं। और जो सुधार के खयाल से अपना अग भग न हो जावे—मानों मैं अपने ही शरीर पर मार मार रहा हूं ऐसा खयाल कर जो दण्ड देता है, वह सापेक्ष है।

तीसरा अतिचार है 'छविछेदन।' इसके दो भेद—सापेक्ष और निरपेक्ष।

श्रावक लोग चीर फाड के कामोंसे डरते या घृणते नहीं हैं। जो दुखियोंके दुःख को निवारण करने के लिये उनके व्रण अर्श आदि का छेदन कर तथा मवाद राध आदि साफ कर मरहम पट्टियोंकी सेवा करता है, उसके अन्दर अपूर्व करुणा का उदय होता है।

अब चौथा अतिचार 'अतिभार' आया। पहली बात तो यह है कि श्रावक को गाडी आदि से अपनी आजीविका चलानी ही नहीं चाहिये। यदि चलानी ही पडे तो सापेक्ष और निरपेक्ष का ध्यान जरूर रखना चाहिये। बैल तथा घोडों आदि के ऊपर इतना बोझ न लाद देना चाहिये कि बिचारों के हाथ टांग टूट जाय या शक्ति से ज्यादा काममें लेने से अपनी जीवन लीला जल्दी समाप्त करनी पडे।

कई मनुष्य भी अपने पेट के लिये बोझ उठाने का काम करते हैं। आप लोगोंका कर्तव्य है कि दया कर उससे शक्ति से ज्यादा काम न लें। उसको उतना ही बोझा उठानेका अधिकार है जितना वह अपने हाथ से सुख पूर्वक उठा सके और रख सके।

कोई प्रश्न कर सकता है कि यदि वह आदमी अपनी मर्जी से, शक्तिसे ज्यादा बोझ उठाना चाहे तो?

इसका उत्तर यह है कि–यदि वह अपने मन से भी उठाना चाहे तो भा.श्रावकको उसे न उठाने देना चाहिये। क्यों कि इस प्रकार बोझा उठाने से उसकी जिंदगी जल्दी खतम हो जाती है, ऐसा पुस्तकों के अन्दर पढने में आया है। ऐसा करने से एक दोष और भी है और वह यह कि करुणा का भाव नष्ट हो जाता है।

इन मनुष्य बैल घोडों आदि के ऊपर ज्यादा न लादना चाहिये, यह बात तो आप समझ ही गये। यहां यह भी समझ लेना चाहिये कि अ–समय में लडके लडकियोंका विवाह करना यह भी उन पर अनुचित बोझा डालना है। कु–जोडे के साथ निवाह कर देना यह भी अनुचित बोझा है। प्रजाके हित को सामने न रख कर जो कानून (अन्याय युक्त) उनके द्वारा जबरदस्ती चलाये जाते हैं यह भी एक प्रकार का बोझ है। अतएव इन कामों को श्रावक व्रतधारी मनुष्य (राजा आदि भी) कभी न करे।

जिन पशुओं और मनुष्यों को अपने अधीन कर रक्खे हैं उनको समय पर विश्राम देना, शक्ति से अधिक काम न लेना इस तरफ से कभी बे–भान न होना चाहिये।

पाँचवाँ अतिचार 'भत्त पाणी विच्छेद' है। इसके भी पूर्ववत् दो भेद है। श्रावक को चाहिये कि अनर्थ से किसी को भूखों न मारे। सापेक्ष भूखों मारने में कोई दोष नहीं गिना गया है। समाज के अन्दर अभी कुछ ऐसी बेहूदी फैली हुई है कि वैद्य वगैरे आज्ञा देते हैं कि इसको रोटी आदि मत देना तो भी घरवाले 'कुछ तो खा ले' कह कहकर जबरदस्ती खिलाते हैं।

रोग अवस्था में भूखों मारना रोगी को भूखों मारना नहीं है पर रोग को भूखों मारना है। इसी प्रकार रोग अवस्था में रोटी देना रोगीको

रोटी देना नहीं है पर रोग को रोटी देना है। वैद्य आदि निश्चय कर कहे कि इस रोग में रोटी आदि देना हानिकर है ऐसी अवस्था में रोटी न दी जाय तो यह पाप का काम नहीं, पर करुणा का काम है। किसी को सुधारने के लिये, 'रोटी न दी जायगी' ऐसा भय दिखाना सापेक्ष में गिना गया है।

मित्रों! आप लोगों को समुच्चय रूप में अतिचारों के रूप बतलाये गये हैं। आपको चाहिये कि इन में सापेक्ष और निरपेक्ष का ध्यान रख कर इस व्रत को पालने की अवश्य कोशीश करें।



हिंसा के कार्य और उनसे बचने का उपाय।



मित्रों ! हिंसा बुरी है ऐसा सारा जगत कहता है पर इसके सच्चे स्वरूप को समझे बिना इस से बच नहीं सकते। हिंसा का स्वरूप शास्त्र में निराले निराले ढग से बतलाया है, इसका यही मतलब है कि मनुष्य इसके वास्तविक रूप को पहचान ले। वस्तुके गुण दोष को अनेक रूप से बतलाने का तात्पर्य केवल यही है कि यदि वह वस्तु अच्छी हो तो उसके प्रति लोग आदर, और बुरी हो तो उसका तिरस्कार करें–धिक्कार करें।

प्यारे भाइयों ! आत्मा हिंसा कब करती है और दया कब, यह मैं आपको बतलाना चाहता हूँ।

आत्मा में दो गुण हैं–शुभगुण और अशुभगुण। शुभ गुण में प्रवृत्त होने से आत्मा दया करती है और अशुभ में प्रवृत्त होने से हिंसा।

हिंसा और अहिंसा आत्मा के परिणाम है। इस पर गणधरोंने शास्त्र के अन्दर बडी ही मार्मिकता के साथ चर्चा चलाई है। उनके परिश्रम का लाभ लेना प्रत्येक मनुष्य के लिये शुभदायी होगा।

शास्त्र में जिस प्रकार एक वस्तु के अनेक भेद बतलाये हैं उसी प्रकार हिंसा के भी कई भेद बतलाये हैं। इसका कारण यही है कि किसी भी प्रकार से लोग हिंसा से बचें। हिंसा के बुरे गुणों को प्रगट करना, हिंसा पर कोई क्रोध नहीं है, यह तो उसके सच्चे स्वरूपको बतलाना है।

वस्तु के यथार्थ गुण दोष बतलाना ससार कल्याण के लिये बहुत जरूरी है।

शास्त्र यदि हिंसा अहिंसा का रूप न समझावे तो मनुष्य उससे दूर कैसे रह सकता है? जो मनुष्य सर्प के जाति स्वभाव को नहीं जानता वह उसके डसने से कैसे बच सकता है। जो जहर के गुण को नहीं जानता, वह अवश्यही धोखा खा जाता है। इसी प्रकार जो हिंसा के रूप को नहीं जानता वह उससे बच नहीं सकता।

हिंसा से बचनेवाले प्राणी की आत्मा में अपूर्व जागृति उत्पन्न होती है। हिंसा से बचना दयावान् का खास लक्षण है।

प्यारे मित्रों! सब प्राणियों ने अपनी अपनी रक्षा के लिये-खाने के लिये दाढ व दाँत, देखने के लिये नेत्र, सुनने के लिये कान, सूँघने के लिये नाक, चखने के लिये जीभ आदि अग उपाग अपने अपने पूर्व कर्म के अनुसार प्राप्त किये हैं। इनको छीन लेनेका मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है। जो मनुष्य मक्खी के पख को नहीं बना सकता उसे, उसको नष्ट करने का अधिकार नहा है। परन्तु स्वार्थ ऐसी चीज है कि इसका ओट में कुछ भी नहीं दिखता। जो अग उपाग दूसरे के लिये उपयोगी है, मनुष्य कहा करते है कि यह तो हमारे लिये पैदा किया गया है। ऐसे कहनेवाले को सिंह मनुष्य की भाषा में कहे कि तू मेरे खाने के लिये पैदा किया गया है, तो वह मनुष्य उसे क्या जवाब देगा?

मित्रों! ये सब स्वार्थ है, इसी कारण अज्ञानी मनुष्य अपने अज्ञान से यद्वातद्वा ऐसी हिंसा करने का पाप किया करता है। ज्ञानी पुरुष ऐसा कभी नहीं करता। वह सब प्राणियों को सुख का अभिलाषी समझता है। वह किसी के द्वारा किसी प्राणी का हिंसा करने का अधिकार नहीं समझता।

जो दूसरे के हाड लेता है, क्या उसके हाड (हड्डियें) बचे रहेंगे ? कभी नष्ट न होंगे ?

' होंगे । '

जो दूसरे के मास को हरण करेगा, क्या उसके मासका कभी नाश न होगा ?

' होगा । '

जो दूसरे का चमडा उतारता है, क्या उसका चमडा नष्ट न होगा ?

' होगा, अवश्य होगा । '

जो प्राणी जिस जीव की हिंसा करता है उसे उसका बदला अवश्य चुकाना पडेगा । इसीलिये ज्ञानी कभी हिंसा नहीं करते । जो अज्ञान से हिंसा करते हैं वे उसे योग्य उपदेश देकर छुडाने का प्रयत्न करते हैं ।

उदयपुर में एक वकील ने पूँछा कि ' महाराज ! आत्मा जब अजर अमर है तब जीव रक्षा की क्या जरूरत ? '

मैंने कहा—आत्मा अजर अमर है तभी तो दया की जरूरत है । यदि आत्मा नष्ट हो जाती हो तो फिर न मारने वाले को पाप और न मरने वाले को ।

प्यारे भाइयो ! पहले आप लोग आत्मा के स्वरुप को ठीक तौर से समझो । समझने के बाद ही आप कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान के बिना भक्ष्याभक्ष्य का भी कैसे ख्याल रह सकता है ?

कई भाई कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान न रखने से ही अभक्ष्य-अभक्ष्य, जैसे मांस और अभक्ष्य-पेय, जैसे शराब आदि का उपयोग करते हैं। बीड़ी सिगरेट चुरुट भी इसीके अज्ञान से लोग काम में लाते हैं।

याद रखिये, मांस और शराब आदि खाने पीने में पाप तो है। पर साथ में यह अस्वाभाविक भी है।

मैंने एक पादरी की लिखी पुस्तक में पढ़ा था कि हिंदू लोगों से हम (ईसाई) विशेष दया रखने वाले हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार गेहूँ आदि पदार्थों में जीव है। हिंदू लोग गेहूँओं को पिसाकर खाते हैं, इसमें कितनी हिंसा होती है। एक बात और भी है जब गेहूँ आदि की खेती की जाती है, तब भी पानी के मिट्टी के, और न जाने कौन कौन से हजारों जीवों की हत्या होती है, तब कहीं जाकर वे [हिन्दू] अपना पेट भरने में समर्थ होते हैं। इस पर भी वे अपने को अहिंसक मानते हैं।

हम (ईसाई) लोग सिर्फ एक बकरे को मारते हैं इससे एक से अधिक का पेट भर जाता है। हिंसा बहुत कम होती है।

मित्रों! पादरी ने अपनी पुस्तक में, जो इस प्रकार लिखा है, क्या आप इसका उत्तर दे सकते हैं?

आप लोगों की चुप्पी से मालूम होता है कि आप इसका उत्तर नहीं दे सकते। खैर, सुनिये—

जो पादरी अपने को कम, और हिन्दूओंको हिंसक विशेष रूप से मानता है वह अनजान भोले लोगों की आखों में धूल झोंकने का काम करता है। वह इस दलील से हिंदूओं के प्रति घृणा प्रगट करवाना चाहता है। और चाहता है कि 'इस दलील के सुनने से लोगों पर हमारी छाप पड़ जायगी और ईशु के चरणों में बहुत से लोग

वालों को राक्षसी–प्रकृतिवाले बना दिये हैं और उनके सुखमय जीवन को दु ख में परिणित कर दिया है।

जिस घर में शराब पीने का रिवाज है, जरा उस घर की दशा तो देखिये ! स्त्रियें बच्चे टुकडे टुकडे के लिये हाय हाय करते हैं पर वह शराब का शौकीन शराब के नशे में झूमता है ! उसके धन का शक्ति का, समयका नाश होता है, पर उसे कुछ भी पता नहीं।

मास खाना अ–स्वाभाविक है, यह मैं पहले कह चुका हूँ। मास खाना अच्छा है या बुरा, इसकी परीक्षा अमेरिका में १०००० विद्यार्थियों पर की गई थी। पाँच हजार विद्यार्थियों को केवल शाकाहार–फल-फूल अन्न आदिपर और पाँच हजार विद्यार्थियों को मासाहार पर रक्खे। ६ महिने बाद जाँच करने पर मालूम हुआ कि जो विद्यार्थी मासाहार पर रक्खे गये थे उनकी बनिस्पत शाकाहारवाले सब बातो में तेज रहे। शाकाहारियों में दया, क्षमा, वीरता गुण प्रगट हुए और मासाहारियों में क्रोध, क्रूरता, भीरता आदि। मासाहारियों से शाकाहारियों में बल विशेष पाया गया। इनमें मानसिक विकाश भी अच्छा हुआ। इस फल को देख कर वहाँ के लाखों मनुष्यों ने मांस खाना सदैव के लिये छोड दिया।

श्री गाधीजी जिस समय विलायतके एक शहर में किसी के घर निमन्त्रित हुए तो वहाँ क्या देखते हैं कि बहुत से यूरोपियन शाकाहारी थे, बनिस्पत हिंदुस्थानियों के।

मासाहार मनुष्यों के लिये स्वाभाविक है या अ-स्वाभाविक इसकी जाँच अमेरिका में हुई, उसका नतीजा आपने सुना, अब एक और जाँच आप कीजिये। यह जाँच पशुओं पर से होनी चाहिये। क्यों कि मनुष्य ने अपनी बुद्धि का विकास किया है इसलिये इसने अ-स्वाभाविक को भी स्वाभाविक मान लिया है। वकील लोग बेईमानी को जितना सचा

सकता। पर हम देखते हैं कि शराब व मास के बिना आज करोड़
की संख्या में जी रहे हैं।

शराब के कारण कई राजाओंका खून हुआ है और कई शरा
बियों ने शराब के नशे में अपनी माँ बहिनों के साथ दु ष्ट्य किया है,
ऐसा सुनने में आया है। सच बात तो यह है कि शराब पीने पर
दिल पर ऐसा नाच असर होता है कि भले बुरे का कुछ भी ध्यान
नहीं रहता। यही क्यों, आप चुरुट को ही लीजिये। एक अंग्रेज विद्वान
को चुरुट पीने का बहुत शौक था। एक दिन उसे चुरुट के जोर से
नशा खूब चढ आया। उसकी औरत सोई हुई थी, छुरे से उसे
मारना चाहा पर थोडी देर में नशे के उतर जाने के बाद इस नीच
विचार पर धिक्कार देने लगा। थोडी देर पीछे उसने फिर चुरुट पिया
इस बार उसने अपनी स्त्री को छुरे से मारने का कु-कृत्य कर ही
दिया।

चुरुट पीने से जब इतना पतन हो जाता है तब शराब से कितना
होता होगा, इसका विचार आपही कीजिये।

शराब पीने वालों के हाथ से हजारों खून हुए हैं।

जिस अमेरिका को आप अनार्य देश कहते हैं वहाँवालों ने इसका
बहिष्कार कर दिया है। पर आपके आर्य देश में इसकी दिन ब दिन
बढ़ता हो रही है इसका क्या कारण है?

शराब और मास का ओसवाल जातिने त्याग किया है, पर सुनते
हैं कई कौम के दुश्मन ओसवाल नाम धर कर छुपा रीतिसे इसका
उपयोग करते हैं। जातिवालों की तरफ से इस कृत्य का तिरस्कार
होना चाहिये।

प्यारे मित्रों! याद रखिये शराब और मास ने कई दैवी-प्रति

वाले, मासखानेवाले और अन्नखानेवाले प्राणियों की आत एक सी नहीं होती।

बदर के शरीर में मास को पचानेवाली आतें नहीं हैं इसलिये वह कभी मास नहीं खाता, फल चट उठाकर खा जाता है। जरा विचार कीजिये जो मनुष्य की शकल का प्राणी (बदर) है, वह तो मास नहीं खाता, पर मनुष्य कहलाने वाला मास खाता है!!

आप जरा पक्षियोंकी तरफ देखिये। आपने कबूतर को कभी कीडा खाते देखा है?

'नहीं!'

'और कोए को?'

'हाँ।'

'क्या आप जानते है कि कबूतर को और कोए को यह पाठ किसने पढाया?

'प्रकृति ने।'

आपने कभी तोतेको मास खाते देखा है?

'नहीं।'

वह आपकी भाषा सिखाने से सीख सकता है। जो मनुष्यकी भाषा सीखे वह तो मास नहा खाता पर जिसकी अपनी भाषा है वह मनुष्य मांस खाय यह कितनी लज्जाकी बात है।

अरे मनुष्य! तू तकदीर लेकर आया है जरा तकदीर पर भरोसा रख और प्रकृतिके कानून को मत तोड। क्या मांस न खानेवाले भूखों मरते है?

हम देखते हैं कि जितने मांसाहारी भूखों मरते हैं उतने शाकाहारी भूखों नहा मरते।

व्यवहार दृष्टि से शाकाहारी हर प्रकारसे सुखी और मांसाहारी दुखी दिखाई देते हैं।

प्यारे मित्रों! मुझे विश्वास है कि आप लोग मांस का सेवन नहीं करते। ऊपर जो विवेचन किया गया है वह इसलिये कि आप मांस के गुण दोष को अच्छी तरह समझ जाँय और इसके सेवन करनेवाले भाईयों को सच्चा मार्ग दिखा सकें।

भाइयों! यद्यपि आप मांससेवी नहीं हैं पर अहिंसावादी और 'अहिंसा परमोधर्म' के अन्दर विश्वास रखनेके कारण कहा जाता है कि हिंसा के द्वारा होनेवाला आप कोई भी काम न करने में अपना कर्तव्य समझते हैं। मैं चाहता हूं कि वैसेही आप, जिन चीजोंके लिये हिंसा होती है, उसको भी पापपूर्ण समझ कर त्याग कर देंगे।

कई चीजें आज बाजारों में ऐसी बिकती दिखाई देती हैं जो ऊपर से चमकती हुई सुन्दर और साफ दिखाई देती हैं पर उनकी बनावट में महा हिंसा तथा घृणित वस्तुओं का उपयोग किया जाता है। आपने विलायती सक्कर देखी होगी। सुना जाता है कि कई भाई आजकल मिठाई बनाने में इसका खूब उपयोग करते हैं। उनका कहना है कि इसमें मैल कम होता है और देशी सक्कर के बनिस्पत कुछ सस्ती भी मिलती है। हाय हाय! जो भाई एक चिंटी के मारने में पाप समझते हैं वे ही अज्ञान से कुछ लाभके लिये धर्म तथा देश को पतन के गहरे गढ़ में डाल देते हैं। माना कि यह दिखने में साफ और कीमत में सस्ती है पर क्या आपने कभी इसपर विचार किया है कि यह कैसे घृणित प्रकार से बनाई जाती है* तथा इसके खाने से शरीर को क्या हानि लाभ पहुँचता है?

---

*(१) 'एन साइक्लो पीडिया ब्रीटानिका' नाम का एक बहुत वर्षों की शोध के बाद तैयार हुआ ग्रन्थ है। जिसके आधार पर सरकार फैसला

भारत में जो सक्कर बनाई जाती है उसमें भी पाप होता है पर विदेशी जितना घोर पाप नहीं। भारत में बनाई जाने वाली सक्कर में एकेंद्रिय आदि प्राणियों का हिंसा होता है पर पचेन्द्रियों की–गौ आदि–जिन्हें आप माता के नाम से पुकारते हैं—की नहीं।

करती है। उसके ६६७ वें पृष्ठ पर लिखा है कि– 'सक्कर साफ करते समय हरेक जानवर का रक्त (खून) तथा हड्डियों के कोलसे का चूरा डालने में आता है।

(२) 'डिक्शनेरी ऑफ आर्ट्स' छठी आवृत्ति लन्दन, पृष्ठ ८२९ में लिखा है कि–'गाढ़े बनाने में आते हैं उस समय ४४ मन सक्कर में २७ मन हड्डियों के कोलसे का चूरा डालने में आता है।

(३) स्वामी भास्करानन्द लिखते हैं कि–"जब मैं विलायत गया तब मैंने कितने ही सक्कर बनाने के कारखाने देखे। उनके पहले खंड (मंजिल) में पहुंचते ही, मुझे उलटी होगी, ऐसा मालूम हुआ। मैं नहीं जानता था कि ऐसी अपवित्र चीजों से सक्कर बनती है। पर नजरों देखने पर से ऐसा आश्चर्य होता है कि जिन चीजों के स्पर्श से भी महान् पाप लगता है, वे हा, हिन्दू लोगों से किस प्रकार खाई जाती है?"

(४) 'भारत मित्र' ता २८-१०-१९०५ के अंक में लिखा है कि– "अच्छा सक्कर बनाने के लिये जिस प्रकार इस देशमें दूध काम में आता है उसी प्रकार वहाँ (विलायत में) जानवरों के लोही से सक्कर (खाँड) का मैल काटा जाता है। कारण कसाईखानों में, दूध के बनिस्पत लोही सस्ता मिलता है।"

(५) मि हैरिश कहते हैं कि–'खांड सूअर के लोही से साफ करने में आती है।'

(६) ए जे टेलर सी ई अपने 'शुगर मशीनरी' नाम के ग्रंथ में लिखते हैं कि–'इंगलैण्ड वगैरे देशोंमें खांड साफ करते समय पानी और गाय का खून काम में लाया जाता है।'

(७) बंबई 'ज्ञान-सागर समाचार' ता १५-१२-१९०५ के अंक में लिखा है कि–परदेशी सक्कर नाना प्रकार के रोगसे पीड़ित सर्व प्रकार के जीवों

प्यारे मित्रों ! आप इससे यह मत समझना कि मैं सक्कर खाने का पक्षपाती हूं। मैं तो सक्कर का कतई बहिष्कार आप लोगों से करवाना चाहता हूं। कारण यह स्वास्थ्य का नाश करने वाली और शरीर के लिये अप्राकृतिक चीज है।

की हड्डियें बैल और सूअर तथा मनुष्य के मूत्र से साफ की जाती है। जिनकी हवा से भी डर, ऐसे रोग वगैरह रोगवाले लोगों का भी मूत्र।

(८) 'स्वदेशोन्नति दर्पण'—परदेशी सक्कर अपवित्र है इतना ही नहीं पर इसके अन्दर छोटे २ प्राणी कान मकोड़ा आदि की चोंच मांस हाड़ पिंजर तथा शरीर के अन्दर के रेसे होते हैं।

मोरस खांड तो बीट चानर साण्ड वगैरा से बनती है पर उसके अन्दर सड़ा हुआ लोही तथा शायद जानवरों की हड्डियां का मिश्रण होता है।

(९) मि. विलसन नामक अंग्रेज गृहस्थ लिखते हैं कि—'विलायती खांड, जो भारतवर्ष में फैली है यह दिखने में सफेद और कीमत में सस्ती पड़ती है, पर उसके कारण बहुत से रोग हिन्दुस्थान में फैल चुके हैं। यह खांड शरीर के रक्त को बिगाड़ती है तथा शक्ति का नाश करती है। दूध आदि पदार्थों में आप इसे डालते हैं, पर आपने को मानना चाहिये कि हम खांड नहीं पर जहर डाल रहे हैं।

इंग्लैंड और भारतवर्ष के बड़े २ वैद्य और डाक्टरों ने स्पष्ट रूप से अपना मत दिया है कि—यह खांड धर्म शास्त्रकी दृष्टि से तो खाना मना है ही, पर इससे प्लेग, महामारी इत्यादि रोग होते हैं और बालकों तथा बड़ी उमर वाले मनुष्यकी मृत्यु संख्या बढ़ी है। इसलिये जो धर्मको न मानता हो उसे आरोग्यकी दृष्टिसे भी इसका खाना छोड़ देना चाहिये।

(१०) 'हिन्दी बंगवासी' कलकत्ता ता. ३० ३ १९०३ के अंकमें लिखता है कि सिर्फ हिन्दुस्थानमें से २८ लाख मन जानवरोंकी हड्डियें, खांड वगैरे खाने के पदार्थ बनाने के लिये विलायत जाती है। स्वदेशी खांड कदाचित परदेशी से महंगी मिले तो भी उसमें पवित्रता और तन्दुरस्ती है तथा मीठास ज्यादा होता है, उसकी खरीदनी चाहिये। जिसकी शक्ति स्वदेशी खांड खरीद लेनेकी नहीं है, उसे गुड़ काम में लाना चाहिये इससे गौहत्या रुकेगी और गउओंकी वृद्धि होकर दूध भी घी वगैर सस्ते होंगे।

यदि आप इसकी सत्यता की परीक्षा करना चाहते हैं तो मैं आप से पूँछता हूँ कि क्या आप केवल पन्द्रह दिन तक सक्कर के ऊपर दिन निकाल सकते हैं ?

'नहीं।'

और रोटियों पर ?

'सारी जिंदगी।'

तब बतलाइये प्राकृतिक याने शरीर को लाभ पहुँचाने वाली इन दोनों चीजों में से कौन हुई ?

लोग कहते हैं 'रॉडों ने दुनियाँ को बिगाड दिया।' मैं कहता हूँ कि जितनी खॉड (सक्कर) ने दुनियाँ को बिगाडा है, उतना नहीं।

अकबर बादशाह के जैसे मुगल राज्य में भारत में ३ से ४ रु मन तक घी मिलता था। एक रुपैये के ७ सेर घी की बात तो आज भी आप अपने बूढे बडेरों से पूँछ सकते हैं। उस समय के लोग आज की तरह चाय की महमानी नहीं करते थे। उस समय चाय का प्रचार हिन्दुस्थान में आज की तरह नहीं था। यहाँ चाय का विशेष प्रचार लार्ड कर्जन के जमाने से हुआ। चाय शरीर के लिये नुकसानकारक और बडी ही अपवित्र वस्तु है। चाय अनेक गरीब लोगों की अश्रुधारा से सींची

देशी और विलायती सक्कर की परीक्षा—

(१) देशी और विलायती दोनों सक्कर को जुदे २ बर्तन में रक्खो। फिर दोनों में थोडा २ सल्फरीक एसिड (गंधक का तेजाब) डालो। देशी सक्कर में से तुरत मीठी मट्टी जैसी सुवास और मोरसम से दुर्गंध आवेगी।

(२) काच के गिलास में गरम पानी भरकर उसमें थोडी मोरस सक्कर डालिये गलते समय सूक्ष्मदर्शकयन्त्र से देखेंगे तो लोहीके रजकण दिखलाई देंगे।

—सम्पादक।

जाती है, यह आपको अभी मालूम नहीं पड सकती, पर जब इस पर विशेष विचार करने का मौका होगा तब आपको मालूम पडेगी कि किस प्रकार बहनों और बच्चों की हाय हाय और त्राय त्राय से यह चाय बढ़ाई जाती है। किस प्रकार गरीबों का पसीना और खून एक होता है।

मित्रों! ये भाई बहन और बच्चे और कोई नहीं, आपके भारतीय ही हैं। इन बेचारों को चाय के खेतों में निर्दय अंग्रेज व्यापारियों के द्वारा सदैव मार सहनी पडती है। क्या ऐसी पापमय चाय का पान करना आप ठीक समझेंगे?*

प्यारे मित्रों! चाय की ही वजह से आज हिंदुस्थान में खांड की ज्यादा माँग बढ़ गई है। लोग यदि नुकसानकारक इस चाय को छोड दें तो विश्वास है कि आपको विदेशी अपवित्र खाँड मंगानी ही न पडे।

पहले के लोग खांड के ज्यादा शौकीन नहीं थे। खांड का मिठाइये भी इतना नहीं बनता था। लोग ज्यादातर गुड की लापसी से ही अपना काम निकालते थे।

भारत के लोगों में ज्यों ज्यों ऐश आरामी बढ़ती गई त्यों त्यों सुस्त होकर हरेक विलायती चीजों को ही पसन्द करने लगे।

पहले के लोगों का सिद्धान्त था— 'मोटा खाना मोटा पहिनना।' पर अब 'पतला खाना और पतला पहिनना' हो गया है। कहाँ है अब वह बच्चों की सुन्दर हास्यमयी माधुरी और कहाँ है वह जवानों का जोश?

प्यारे भाइयो! आपका यह ऐश आराम बड़ा खतरनाक है। यह न केवल इहलोक का, पर परलोक का भी दुःख देनेवाला है।

---

* चाय पर विशेष विचार किसी अगाडी की पुस्तक में प्रकाशित किया जायगा।
—सम्पादक।

इहलोक की तो यों है कि इसके प्रताप से आप दिन दिन शक्ति हीन हो रहे हैं, और शौकिनी चीजें करीब करीब तमाम ही विदेश से आने से दरिद्र भी। और परलोक की यों कि शौक करने की जितनी भी चीजें आज दिखाई देती हैं वे प्राय महापाप से बनती हैं।

शौक की चीजों में सब से पहला नंबर कपड़े का है। आज कल कपड़ा प्राय विलायत से आता है। यह दिखने में चटकीला मटकीला और सुन्दर होता है पर कई विद्वान् अंग्रेजों ने अपनी पुस्तकों में लिखा है कि इनके बनाने में चर्बी आदि काम में लाई जाती है।

सुना गया है कि चर्बी योग्य प्रमाण में सीधी न मिल सकने के कारण कसाईखानों में सैकड़ों मूक गरीब प्राणियों का बे-रहमी के साथ नित्य कत्ल होता है।

मित्रों! यह कत्लखाना आप लोगों और केवल आप लोगों के लिये चल रहा है। यदि आप अपनी मोज शौक को कम कर दें तो यह होनेवाला भयकर हत्याकांड शीघ्र बंद हो सकता है।

मेरा यह कटाक्ष न केवल विदेशी वस्त्रों की तरफ है पर उन वस्त्रों की तरफ भी समझिये जो भारत की मिलों में तैयार होते हुए भी चर्बी आदिसे बचे हुए नहीं हैं।

मित्रों! जरा विचार तो कीजिये कि आप किसकी सन्तान हैं। आप उन वीर क्षत्रियों की सन्तान हैं जिन्होंने दूसरों की रक्षा के लिये अपने शरीर का मांस काट कर दे दिया पर उस शरणागत का एक बाल भी बाँका न होने दिया। आप लोग इस वीर का नाम जानते हैं? इस वीर का नाम था—राजा मेघरथ।

एक दिन की बात है, राजा मेघरथ अपने धर्मस्थान में बैठा हुआ था। एक भयभ्रान्त कबूतर डरता हुआ उनकी गोद में आ गिरा। जोरा—

' राजन् ! मैं आपकी शरण हूँ, मेरी रक्षा कीजिये । '

राजा आश्वासन देते हुए—" तुम किसी प्रकार से मत डरो । मैं तुम्हारी हर प्रकार रक्षा करूँगा । "

इतने में एक शिकारी (पारधी) दौड़ता हुआ आया । वह लंगोट पहिने हुए था । उसका शरीर काला, होंट मोटे, केश बिखरे हुए और आँखें लाल थीं । बोला—

" राजा, मेरी शिकार दो । "

राजा शांति से—" भाई, मैं तुम्हे इसे नहीं दे सकता । कारण, यह मेरी शरण में आगया है । "

शिकारी—" बस बस, मेरी शिकार फेंक दो ! नहीं तो ठीक न होगा । "

आज कल जैसा कोई राजा होता तो उसे धक्के देकर उसी वक्त निकलवा देता पर मेघरथ राजा ऐसा न था । वह दुष्टों पर भी दया और क्रूरों को भी सुधारने वाला था ।

" भाई ! क्या करोगे ? " राजा ने पूँछा ।

शिकारी—" क्या क्या करूंगा अपना दुःख मिटाऊँगा, मुझे भूख लग रही है । "

राजा—" भूख लग रही है तो तुझे खाने को देता हूँ, चाहे सो लेले । "

शिकारी—" क्या तू मुझे धर्म का देना चाहता है ? मैं धर्म का नहीं लेता । मैं अपने उद्योग से अपना पेट भरना चाहता हूँ । "

राजा—" बहुत अच्छा, भीख तो लेनी ही नहीं चाहिये । मैं तुझे भीख नहीं देता पर कीमत लेकर चीज देता हूँ । "

शिकारी—" कैसे ? "

राजा—" मुझे यह कबूतर पसंद आगया, मैं इसके बदले में, तू मागे सो देनेको तैयार हूँ। "

शिकारी—" ऐसा ? अच्छा, मैं मॉगूँगा वह देगा ? "

राजा—" बराबर। "

शिकारी—" देखना, अपनी जबानसे फिर मत जाना। मैं ऐसी वैसी चीज मॉगनेवाला नहीं हूँ, या मुझे अपनी शिकार दे दे। "

राजा—" कबूतर को छोडकर चाहे सो माग ले सब कुछ देनेको तैयार हूँ।"

शिकारी—"अच्छा तो मुझे इस कबूतरके बराबर अपने शरीर का मांस दे दे। "

मित्रों! राजा मेघरथ अपने शरीरको नाशवान् समझ कर इस बातको कबूल करता है और अपने शरीर का मांस काट कर दे देता है।

जिसके पूर्वज एक प्राणीकी रक्षाके लिये अपने शरीर का मांस काट कर देना कबूल कर लेता है पर प्राणी की हिंसा नहीं होने देता। अब उन्हांकी संतान अपने तुच्छ मौज-शौक के लिये हजारों प्राणियों के नाश को देखकर भी हृदय में दया न लाये उन्हें क्या कहना चाहिये?

आपके पूर्वज पहले बिना चर्बीका, देशका बना कपडा पहनते थे, जिसे आज के लोग ' खादी ' के नामसे पुकारते है।

मित्रों! खादी के उपयोग से न केवल पैसेकी ही बचत होती है पर धर्म भी होता है।

बिस्कुट विलायत आते है, आपके कई देश भाई उनको मजे से खाते हैं, यह रोटी की पराधीनता नहीं तो और क्या है ?

सुनते हैं, देश में 'वेजिटेबिल' नाम का नकली घी (!) तो फैला ही था, अब एक प्रकार की लकडी का आटा भी आने लग गया है।

प्यारे भाइयों ! ये बिस्कुट, यह घी, और यह आटा आपके शरीर का कितना नाश करने वाला है ? बिस्कुट आदि खाद्य पदार्थ किस प्रकार सडा कर बनाये जाते है और आप लोग उसके डिब्बों पर के चटकीले सुंदर मनमोहक लेबिल देख कर किस प्रकार खरीद कर पेट म रख देते है !

पहले के लोग देशी सादी जूतियें पहनते थे, पर अब आप में से अधिकांश लोग विलायती बूटों का उपयोग करना ज्यादा पसन्द करते हैं। देशी जूती मरे हुए जानवरों के चमडे से बनती है पर विलायती बूटों के लिये सैकडों पशुओं का कत्ल किया जाता है। चमडा जितना मोटा और मुलायम हो उतना ही वह अच्छा गिना जाता है। इसी कार्य को सिद्ध करने के लिये हत्यारे लोग पशुओं को पहले खरीद लेते हैं, बाद में कई दिनोंतक भूखों रख कर उनकी चर्बी गला देते है, फिर लट्ठों की मार से वे इस बुरी तरह से मारते है कि उनका सारा शरीर रोटी की तरह फूल जाता है। अन्त में ये हत्यारे कत्ल करने की मशीनों के अगाडी हरा हरा कोमल घास डालते है। ये बिचारे अनेक दिनों के भूखे प्यासे अबोध पशु अपने पेट की तीव्र ज्वाला मिटाने के लिये ज्यों ही खाने के लिये उस पर मुँह डालते है त्यों ही मशीन की मोटी और चमचमाती हुई तेज छुरी कर्-र्-र्र करती हुई उनकी गर्दनों पर वेदर्दी से गिर कर उनके सिर को धड से अलग कर देती है। छट-पटाते हुए उन पशुओं के शरीर, निकलती हुई उनमें से खून की अनेक

विलायती कपड़ों का जब इस देश में प्रचार नहीं था तब लाखों मनुष्य इसी धन्धे के द्वारा अपने पेट भर लेते थे। इतिहास कहता है कि बाद में स्वार्थी अंग्रेजों ने उन बिचारे गरीबों के अंगूठे कटवा लिये और अपने देश (विलायत) के वस्त्रों का यहां प्रचार बढ़ा दिया। मिलें भी यहां भेज दिये गये। इन मिलों से भी देशके मनुष्योंकी क्षति कम न हुई। सैकड़ों मनुष्योंकी रोटी पर कुछ मनुष्य ही हाथ साफ करने लगे और बाकी के भूखों मरने लगे। देशका सौभाग्य समझिये कि यह हम गुरुओं और देशके नेताओंने इस भयंकर अत्याचार को पहचाना और चर्खे का पुनर्निर्माण किया। चर्खे के द्वारा आज फिरसे सैकड़ों भाई-बहनोंको रोटी हाथ आने लग गई। जो भाई खादी का उपयोग करता है, वह गुप्त रीतिसे इन गरीब भाई बहनों को मदद पहुँचा कर पुण्योपार्जन करता है।

मित्रों! याद रखिये, खादी खादी और देश की आजादी है।

मित्रों, क्या आप जानते हैं कि देश पराधीन कब होते हैं?

"नहीं।"

मैं बतलाता हूं। जो देश वस्त्र और रोटी के लिये दूसरे का मुँह नहीं ताकता, वह कभी पराधीन नहीं हो सकता पर जो इन दो बातों के लिये दूसरों की तरफ देखता है वह गुलाम बने बिना नहीं रह सकता।

यह देश वस्त्र से तो गुलाम बन ही चुका, अब रोटी के लिये भी दूसरे के पास हाथ पसारने लग गया है।

मित्रों! रोटी से मतलब आप अपने पेट भरने का ही बात न समझ लेना। रोटी से मेरा मतलब खान पान की चीजों से है।

क लिये यहाँ आये हो उसी प्रकार दया का भी स्थूल रूप बाहर दिखाइये तब मालूम पडेगी कि आप मे दया है।

'दया' शब्द दय् रक्षणे धातुसे बना है। इसका अर्थ दूसरों पर अनुकम्पा (करुणा) लाना है।

आपको दया कहाँ करनी चाहिये? क्या मेरे पास आकर? नहीं, मेरे पास तो आप करते ही हैं।

दया का उपयोग वहाँ ~~अवश्य~~ कीजिये जहाँ बे-कसूर हजारों मूक प्राणी छुरी के घाट उतार दिये जाते हैं, उनके गले पर खटाखट खंजर चला दिया जाता है, उन बेचारों के खून से नदी का छोटा सा नाला बह निकलता है।

क्या कभी आपने दया माता के दर्शन किये है?

'नहीं।'

करने हैं?

यदि 'हाँ' तो आप कत्लखाने में दर्शन कीजिये।

यूरोपियन सज्जन टाल्सटाय एक बडे विद्वान् और विचारशील पुरुष माने गये हैं। ये कोरे विद्वान् ही नहीं पर अपने जीवन को इतना उच्च बना लिया था कि एक आदर्श पुरुष भी माने जाते हैं। उनका दृढ धर्म जीवन था। इनके जीवन का एक एक दिन ऐसा बीतता था कि इनकी छाप दूसरे मनुष्य पर पडे बिना न रहती थी। इनका इतना धर्म-मय जीवन कसाई खाने को देख कर हुआ था। कहा जाता है कि वे हमेशा कसाईखाने में पशु-वध देखने जाते। वहाँ पशुओं ऊपर छुरी चलने पर उनकी तडफडाट देख कर रोमांचित हो जाते, घबडा जाते और विचार करते, कि-हाय! यदि इसी प्रकार यह छुरी हमारे ऊपर चले तो हमें कितना दुःख हो? कितने छटपटाये? ये बिचारे मूक

तेन धाराएं और नाचती हुई उनकी पुतलियें देख कर उस समय किस का हृदय करुणा से न उमरेगा ? कौन उस बिभत्स दृश्य को देख रोमाञ्चित न होगा ? और कौन कठोर हृदय उस अवसर पर न रो पड़ेगा ?

मित्रों ! क्या मौज शौक के तुच्छ सुख के लिये ऐसे भयानक हत्याकाण्ड का भागी बनना योग्य है ? यदि नहीं, तो आप सिर्फ बूट ही नहीं, पर ऐसे ऐसे भयानक हत्याकाण्ड जिस वस्तु के बनाने के लिये रचे जाते हों, उन सब का त्याग कर दीजिये।

मित्रो ! आप मेरे पास दया देवी के दर्शन करने के लिये ही तो आये हैं न ?

श्रावक—'जी हां।'

क्या आप जानते हैं कि दया देवी का मन्दिर कहाँ है ?

श्रावक—'हृदय में।'

भाई साहबो ! दया माता यदि हृदय में होती तो दया के उपदेश देने की जरूरत ही नहीं पड़ती। हृदय में दया हो, क्या ऐसी हालत में 'दया दया' पुकारने की जरूरत पड़ सकती है ?

'नहीं।'

जिसके शरीर में चैतन्य है उसे फिर कोई जुलायगा ?

'नहीं।'

क्या चैतन्य छिपा रह सकता है ?

'नहीं।'

फिर मित्रों ! जिस प्रकार आप लोग धर्म की स्थूल क्रिया करने

के लिये यहाँ आये हो उसी प्रकार दया का भी स्थूल रूप ग्रहण किया तब मालुम पड़ेगी कि आप मे दया है।

'दया' शब्द दय् रक्षणे धातुसे बना है। इसका अर्थ दूसरों पर अनुकम्पा (करुणा) लाना है।

आपको दया कहाँ करनी चाहिये ? क्या मेरे पास आकर ? नहीं, मेरे पास तो आप करते ही हैं।

दया का उपयोग वहाँ ~~जाकर~~ कीजिये जहा बे-कसूर हजारों मूक प्राणी छुरी के घाट उतार दिये जाते हैं, उनके गले पर खटाखट खंजर चला दिया जाता है, उन बेचारों के खून से नदी का छोटा सा नाला बह निकलता है।

क्या कभी आपने दया माता के दर्शन किये हैं ?

'नहीं।'

करने हैं ?

यदि 'हाँ' तो आप कत्लखाने में दर्शन कीजिये।

यूरोपियन सज्जन टाल्सटाय एक बड़े विद्वान् और विचारशील पुरुष माने गये है। ये कोरे विद्वान् ही नहीं पर अपने जीवन को इतना उच्च बना लिया था कि एक आदर्श पुरुष भी माने जाते हैं। उनका दृढ़ धर्म जीवन था। इनके जीवन का एक एक दिन ऐसा बीतता था कि इनकी छाप दूसरे मनुष्य पर पडे बिना न रहती थी। इनका इतना धर्म-मय जीवन कसाई खाने को देख कर हुआ था। कहा जाता है कि ये हमेशा कसाईखाने में पशु-वध देखने जाते। वहाँ पशुओं ऊपर छुरी चलने पर उनकी तड़फड़ाट देख कर रोमाचित हो जाते, घबरा जाते और विचार करते, कि-हाय ! यदि इसी प्रकार यह छुरी हमारे ऊपर चले तो हमें कितना दुःख हो ? कितने छटपटाये ? ये विचारे मूक

तेज धाराऐं और नाचती हुई उनकी पुतलियें देख कर उस समय किस का हृदय करुणा से न उभरेगा ? कौन उस बिभत्स दृश्य को देख रोमांचित न होगा ? और कौन कठोर हृदय उस अवसर पर न रो पड़ेगा ?

मित्रों ! क्या मोज शोक के तुच्छ सुख के लिये ऐसे भयानक हत्याकांड का भागी बनना योग्य है ? यदि नहीं, तो आप सिर्फ बूट ही नहीं, पर ऐसे ऐसे भयानक हत्याकाण्ड जिस वस्तु के बनाने के लिये रचे जाते हों, उन सब का त्याग कर दीजिये।

मित्रों ! आप मेरे पास दया देवी के दर्शन करने के लिये ही आये हैं न ?

श्रावक—'जी हां।'

क्या आप जानते हैं कि दया देवी का मन्दिर कहाँ है ?

श्रावक—'हृदय में।'

भाई साहबों ! दया माता यदि हृदय में होती तो दया के उपदेश देने की जरूरत ही नहीं पड़ती। हृदय में दया हो, क्या ऐसी हालत में 'दया दया' पुकारने की जरूरत पड़ सकती है ?

'नहीं।'

जिसके शरीर में चैतन्य है उसे फिर कोई बुलायगा ?

'नहीं।'

क्या चैतन्य छिपा रह सकता है ?

'नहीं।'

प्रिय मित्रों ! जिस प्रकार आप लोग धर्म की स्थूल क्रिया करने

के लिये यहाँ आये हो उसी प्रकार दया का भी स्थूल रूप बाहर दिख- रूप तब मालूम पड़ेगी कि आप में दया है।

'दया' शब्द दय् रक्षणे धातुसे बना है। इसका अर्थ दूसरों पर अनुकम्पा (करुणा) लाना है।

आपको दया कहाँ करनी चाहिये? क्या मेरे पास आकर? नहीं, मेरे पास तो आप करते ही हैं।

दया का उपयोग वहाँ [illegible] कीजिये जहाँ बे-कसूर हजारों मूक प्राणी छुरी के घाट उतार दिये जाते हैं, उनके गले पर खटाखट खंजर चला दिया जाता है, उन बेचारों के खून से नदी का छोटा सा नाला बह निकलता है।

क्या कभी आपने दया माता के दर्शन किये हैं?

'नहीं।'

करने हैं?

यदि 'हाँ' तो आप कतलखाने में दर्शन कीजिये।

यूरोपियन सज्जन टाल्सटाय एक बड़े विद्वान् और विचारशील पुरुष माने गये हैं। ये कोरे विद्वान् ही नहीं पर अपने जीवन को इतना उच्च बना लिया था कि एक आदर्श पुरुष भी माने जाते हैं। उनका धर्म जीवन था। इनके जीवन का एक एक दिन ऐसा बीतता था कि इनकी छाप दूसरे मनुष्य पर पड़े बिना न रहती थी। इनका इतना धर्म-मय जीवन कसाई खाने को देख कर हुआ था। कहा जाता है कि ये हमेशा कसाईखाने में पशु-वध देखने जाते। वहाँ पशुओं पर छुरी चलने पर इनकी तड़फड़ाट देख कर रोमांचित हो जाते, [illegible] जाते और विचार करते, कि—हाय! यदि इसी प्रकार यह छुरी हमारे उपर चले तो हमें कितना दुःख हो? कितने तड़पाये? ये [illegible] [illegible]

शास्त्रकी बात इस समय कुछ न कहकर पाश्चात्यों का इस विषय पर क्या मत है, साइंटीफिकिस्टोंने इस पर क्या राय जाहिर की है, यह सुनिये—

ये कहते हैं कि प्रकृति की वस्तुओं में गति की प्रतिगति और आघात का प्रत्याघात होता रहता है। उदाहरण रूप एक पर्वत के पास जाकर आवाज दी गई कि 'तुम्हारा बाप चोर।' तो उसकी प्रतिध्वनि निकलेगी— 'तुम्हारा बाप चोर।' जैसी ध्वनि की जायगी वैसी ही प्रतिध्वनि निकलेगी। अगर कोई अपने बापको चोर कहलाना चाहे तो उसे कहे कि 'तुम्हारा बाप चोर।' यदि न चाहे तो न कहे। जिस प्रकार प्रतिध्वनि में 'तुम्हारा बाप चोर' कहा, इससे तुम्हें दुःख होता है, ऐसा समझ कर किसी को कटु शब्द कभी न कहने चाहियें।

मंगल से मंगल और अमंगल से अमंगल होता है। गति की प्रतिगति और अघात का प्रत्याघात होता रहता है। जो पार्ट आज दूसरों से करवाते हो, वही पार्ट कभी तुम्हें करना पड़ेगा। सारांश यह कि यदि तुम किसी को कष्ट दोगे तो तुम्हें कष्ट मिलेगा। तुम किसी के प्राण लोगे तो कभी तुम्हें प्राण देने पड़ेंगे। शस्त्र से गर्दन उड़ाओगे तो वापस गर्दन उड़ेगी। मांस खाओगे तो अपने शरीर का मांस खिलाना पड़ेगा।

हाँ, एक बात जरूर है, जीवन निर्वाह के लिये प्रकृति की शोभा न बिगड़े, इसको ध्यान में रखकर सरलता से, बिना किसी को दुःख दिये अपने निर्वाह का आयोजन किया जाता है; उसे अधर्म नहीं कह सकते। धर्म किसी का नाश नहीं चाहता। जो मनुष्य नीति से पैसा पैदा करता है, उसे कोई चोर बदमाश कह कर दंड देता है?

'नहीं।'

पर जो नीति अनीति का कुछ भी खयाल न कर केवल पैसा से अपना जेब भरना चाहता है उसे कोई क्या कहेगा ?

' चोर , बदमाश आदि ।'

उसे दंड मिलेगा ?

' अवश्य ।'

यही बात अपने निर्वाह कार्य के लिये समझनी चाहिये । जो अपने मौज शौक के फन्दे में आकर मूक प्राणियों का वध करता है, उसे भी दंड मिले बिना न रहेगा ।

माता के स्तन से बालक दूध पीता है यह उसका धर्म है, पर जो बालक माता के दूध की जगह स्तन का खून पीना चाहता है, क्या उसे कोई बालक या पुत्र कहेगा ?

' नहीं ।'

लोग उस बालक को बालक या पुत्र नहीं पर जहरीला कीडा कहेंगे ।

यह प्रकृति गौ, भैंस, बकरी आदि से दूध दिलाती है । जगत का इससे बड़ा उपकार होता है पर लोगों की अजब ताकीद इन उपकारी पशुओं का जल्दी खात्मा कर, एक दो दिन पेट भर कर ज्यादा दिन तक पेट भरने वाले घी दूध के स्रोत को बंद कर देती है । इसका मतलब यह हुआ कि फलों को धीरे धीरे आते देख कर वृक्ष का मूलोच्छेदन कर दिया गया ।

इन बिचारे मूक प्राणियों की वकालत कौन करे ? गजब की बात है कि साक्षात् इनकी करुणाभरी चीख को सुनकर भी हत्यारों का दिल पत्थर सा क्यों रहता है ? परतन्त्र हैं इसलिये । इनको काम क्रोध मोह

आदि ने अपने वश में इस प्रकार कर लिये हैं कि इनको कुछ सूझता ही नहीं।

आप लोगों में से बहुत से भाई निमासाहारी हे। ये अपने मन में सोचते हैं कि मासाहारी ही पापी होते हैं, हम तो इस पाप से बचे हुए हैं। लोगों को दूसरे की बात की कडी टीका सुन कर मजा आता है पर जब उनके स्वार्थ के काम की कोई टीका करता है तब उनको अच्छी नहीं लगती। अच्छी लगे या न लगे सच्चा आदमी तो गुण दोष बतला ही देता है।

जो केवल मासाहारियों को ही पापी समझता है उसे चाहिये कि पहले अपने थोकडे खोलकर देखें कि उसमें कितने प्रकार के पाप बतलाये हैं। क्या उन पापों का करने वाला पापी नहीं गिना जावेगा?

'जरूर गिना जावेगा।'

जैन शास्त्र के अन्दर १८ प्रकार के पाप माने गये हैं। जैसे—झूंठ, चोरी, जारी, क्रोध, मान आदि करना। जो इन पापों का सेवन करे और धर्मात्मा बनने की डींग मारे क्या वह वास्तव में धर्मात्मा है?

'नहीं।'

मित्रों! जैन सिद्धान्त को यदि कोई ठंडे मस्तिष्क से विचारेंगे तो पता चलेगा कि यह कैसा पूर्ण है। इसकी आदि से लेकर अन्त तक की तमाम बातें ठीक उतरती हैं। हिसाब करनेवाले बहुत मिलेंगे पर आना पाई तक का हिसाब मिलाने वाले को क्या आप बडा बुद्धिमान् न कहेंगे?

'कहेंगे।'

'पाप से बचना चाहिये' 'धर्म करना चाहिये' इस प्रकार बहुत से भाई कहते हैं, पर पापों से बचने का और धर्म को करने का बहुत

कम भाई विचार करते हैं। ये भाई कसाई को बुरा कहते है, पापी समझते है, पर स्वयं जालसाजी करने में बाज नहीं आते, कपट करने से नहीं चूकते, दूसरे पर दोष मँढ़ने में नहीं भूलते, गरीबों के गले दबाने में भय नहीं खाते, झूठे मुकदमे चलाने में शर्म नहीं खाते, बिल्कुल खोटी गवाहियें दिलाने में पर पाछे नहीं रखते, दूसरे के धन को स्वाहा करने में नहीं हिचकते, पराई स्त्रियों पर खोटा नजर रखने में घृणा नहीं खाते। कहाँ तक कहें, ये पाप करते हैं पर पापी कहलाने में अपना तौहीन समझते हैं। कसाई छुरी फेर कर कत्ल करता है, पर ये कदम को चला कर ही कई बार कइयों की एक साथ हत्या कर डालते हैं। बिचारा कसाई हत्या करके हत्यारा कहलाता है पर ये कई हत्यायें करके भी धर्मात्मा बने रहते हैं।

ये लोग यह नहीं समझते कि जैसे हम फसाते हैं वैसे हम भी फँसाये जायेंगे, हम मारते हैं पर कभी हम भी मारे जायेंगे। आघात का प्रत्याघात हुए बिना न रहेगा।

मित्रों! शास्त्र कहता है कि एक बार तमाम प्राणियों को अपनी आत्मा के तुल्य देख जाओ फिर पता लग जायगा कि दूसरों को दुख कैसा होता है।

"आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति।"

आत्मा के तुल्य तमाम प्राणियों को देखने पर सुख दुःख की साक्षी तुम्हारा हृदय अपने आप देने लग जायगा। आपको शास्त्रों के देखने की जरूरत न रहेगी, सच्चिदानंद अपने आप शास्त्र का सार बतला देगा।

मित्रों! मनुष्य को दूसरे के भले बुरे कामों की मालूम पड जाती है पर उसमें स्वयं में कैसे कैसे भले बुरे गुण हैं, यह मालूम बहुतों को नहीं पड़ती। उनको तो तभी मालूम पडती है, जब लोग उनके गुणों

पर कुछ टीका टिप्पणी करने लगते हैं। जो मनुष्य अपने गुणों की टीका देखकर उनको सुधारने की कोशिश करता है वह बुद्धिमान् गिना जाता है।

मित्रो! अपनी आत्मा हिंसक को देख कर—शिकारी को देख कर उसे क्रूर दुष्ट कहता है पर अपनी आत्मा ने भी अनेक बार जीवों को मारा होगा, उन्हें कष्ट पहुँचाया होगा।

'हे आत्मन्! अब तू शिकारी नहीं है, हिंसक नहीं है, यह तू समझ गयी हो तो अब अज्ञान के जाल में मत पड़ना।' ऐसी भावना कीजिये।

भावना से आपकी आत्मा में अजब शक्ति चमत्कृत होगी, और आपको थोड़े ही दिनों में आनन्द का अनुभव होने लगेगा। यह आनन्द थोड़े प्रमाण में न मिलेगा, पर इतने प्रमाण में मिलेगा कि आप उस आनन्द की भेंट दूसरों को भी कर सकेंगे।

एक बात जरूर है, और वह यह कि यह भावना स्वार्थ की न हो। इस भावना में 'मुझे धन मिले' 'पुत्र मिले' 'स्वर्ग मिले' 'मैं इतना वैभवशाली बनूं' 'राजा बन जाऊं' 'बादशाह बन जाऊँ' आदि की कांक्षा न हो। भावना अपने लिये न हो पर संसार की कल्याण कामना की हो। उसमें प्रार्थना की जाय कि—

दयामय ऐसी मति हो जाय।
त्रिभुवन की कल्याण कामना दिन दिन बढ़ती जाय॥ टेक॥
औरों के सुख को सुख समझूँ, सुख का करूँ उपाय।
अपने सब दुखों को सह लूँ, पर दुख सहा न जाय॥ १॥
भूला—भटका उलटी—मति का, जो है जन समुदाय।
उसे दिखाऊँ सच्चा सत्पथ, निज सर्वस्व लगाय॥ २॥

जब आप ऐसी भावना करने लग जायेंगे तब आपकी आत्मा में अपूर्व जागृति उत्पन्न होगी। आपका सच्चिदानंद प्रगट हो जायगा और मुस्कराता हुआ घोषणा करेगा कि—

'मित्ती मे सव्व भूएसु।' *

अभी तो आप परदेशों में धन कमा लाते हैं और यहाँ (मारवाड़ में) आकर गप्पें मारा करते हैं पर उक्त घोषणा होने पर क्या आप इस प्रकार निकम्मे बैठे रहेंगे? उस समय आपको एक क्षण का विश्राम लेना भी औचित्य से परे मालूम होगा।

उस समय आप के जीवन की वह धारा जो प्रबलवेग से नाच स्वार्थों के गहन गह्वर में पतित हो रही है, निस्वार्थ की मंदाकिनी का रूप धारण कर धराधाम पर शान्त गंभीर गति से प्रवाहित होने लग जायगी।

आप के जीवन की वह धारा जो अभी ईर्षा, क्लेश, दुःख, सन्ताप आदि के विषैले पौदोंके बढ़ाने में सहायक बनती है, उस समय प्रेम, हर्ष, आनन्द, शान्तता आदि की वल्लरियों को नव-पल्लवित करने में आधारभूत-सी होकर अखिल विश्व के सर्व प्राणियों की गुप्तरूप से सेवा बजायगी।

याद रखिये, आपको शास्त्र में 'धम्म सहाया' अर्थात् धर्म के अन्दर सहायता देने वाले कहे हैं। क्या गप्पे मारनेवाले कभी धर्म के सहायक कहला सकते हैं?

'नहीं।'

धर्म के सहायक वे ही कहला सकते हैं जो स्वय धर्म नियमों का

---

* 'सब प्राणी मेरे मित्र हैं।'

पालन करते है तथा सच्चे हृदय से प्रेममयी भाषा म दूसरों को उसका बोध कराते हैं।

गप्पें मारनेवाले स्वय तो पाप बाँधते ही हैं पर दूसरों से भी बधवाते हैं। क्यों कि इन थोथी गप्पों में दूसरों की निंदा, दूसरों की चुगली और दूसरों की खोटी-चोखी ही का मुख्य विषय चलता रहता है।

आपस में फूट आज खूब बढ रही है इसका मुख्य कारण क्या?

'ये ही गप्पें।'

मित्रों! यदि आपके कुछ काम नहीं है तो व्यर्थ की बातें मत मारो, फजूल गप्प न उड़ाओ। इन बड़बड़ाहटों से आपकी आध्यात्मिक शक्ति कम हो जाती है। अत एव अवकाश के समय मौन का अवलम्बन करो। मौन साधारण को शक्तिमान् पुरुष बना देता है।

जब किसी एंजिन की शक्ति को काम में लानी होती है तब मशीन चलानेवाला कारीगर उस मशीन की शक्ति को संचित कर लेता है। बुद्धिमान् भी उस एंजिन चलानेवाले कारीगर की नाईं अपने मस्तिष्क की शक्तियाँ एकत्रित करके उनको रोकी हुई रखता है ताकि जब और जहाँ चाहिये वहीं उनका उचित और सशक्त प्रयोग करके वह अपने आवश्यक कार्य को सफलता के साथ सम्पादन कर लेता है। बकझक करने वाले में यह शक्ति नहीं होती।

यदि व्यर्थ की बकझक की टेव लोगों में न होती, फजूल की निंदा करने का अभ्यास लोगों में न होता, अकारण गप्पों के लिये लोग अपने अमूल्य समय का नाश न करते तो आपकी समाज में ये दल-बंदियें, ये धडे और ये पार्टियें कभी नहीं दिखलाई देतीं।

मित्रों! मैं पहले कह चुका हूँ कि द्वेष फैलाना हिंसामें गिना गया है, [illegible] छोड दीजिये। आप 'औरों के सुखको

देख कर कभी न जऊँगा ' इस मनका जाप कीजिये, पवित्र बन जायेंगे मैं आपको वेद सुनाऊं, पुराण सुनाऊँ या कोई धर्मशास्त्र सुनाऊँ, सब यही बात मिलेगी।

कई भाई कह सकते हैं कि दूसरोंके सुख से हमें क्या फायदा! आप इस भेद के पर्दे को उठा डालिये फिर देखिये क्या आनन्द आता है। आप यदि इस पड़दे को उठा देंगे तो ईश्वर के दर्शन हो जायँगे।

मैं जानू हरि दूर है, हरि है हिरदा माँय।
आडी टाटी कपट की, तासे सूझत नाँय॥

(कबीर)

ईश्वर कहता है—हृदय शुद्ध करो; विश्वास रक्खो, मेरे दर्शन प जाओगे। इसके बिना मेरा भेद के लिये भटकते ही रहो पर कहीं न पाओगे।

हृदय शुद्धि का उपाय वही है जो मैंने उपर बतलाया था अर्थात् दूसरे के सुखको देख कर सुखी बनो यही हृदय शुद्धि का उपाय है।

मेरा अनुमान है, ऐसा हृदय शुद्धि आप लोगों ने नहीं की। आप कहेंगे कैसे ? सुनिये—

किसी के मकानमें सरकारने मुफ्त में नल लगवा दिया। अब उस मनुष्यको कितना सुख होगा ? वह समझेगा—अहा, मेरे उपर सरकारका कितना मेहरबानी है, मेरे घरमें नल लगाकर मेरा इज्जत की गई है। है कोई मेरे समान दूसरा कोई इज्जत का पात्र ?

इस प्रकार मुफ्त में नल लगाने से इस भाईको कितनी खुशी हुई ?

पर अब सरकार, जिस प्रकार इसके घरमें नल लगवाया यदि उसी प्रकार सबके घरमें नल लगवा दे तो उस भाईको उतना आनन्द होगा ?

'नहीं।'

वह समझेगा—'वाह, इसमें क्या हुआ ? सब के घरों में लगाया वैसे मेरे घर में भी।'

क्या सब के घर में नल लगाने से वह नल खोटा हो गया ?

'नहीं।'

पर उस भाई के हृदय में द्वेष उत्पन्न हो गया, इसलिये पहले जो मूँछों पर ताव देता था, वह भूल गया। जब उसके घरमें नल लगा था तब वह समझता था कि मैं बडा और सब छोटे। पर जब सब के घरों में नल लग गये तब कहने लगा—

'इसका क्या।'

इसी प्रकार मैं बहनों की बात कहता हूँ—

एक सेठानी सोने के दागीनों में हीरों जडी नगडिये पहन कर दो चार गरीब दासियों के साथ लटपट करती चलती है, तब समझती है—'मैं बडी।' पर जब किसी देवता क प्रताप से उन गरीब दासियों को हीरे के दागीने मिल जायँ तो उस सेठानी को कितना दुःख होगा ? उस सेठानी से पूँछा जाय-'क्या ये तेरे बाप का लूट कर लाई है, जिसमे तुझे इतना दुःख होता है ?

मित्रों! इस प्रकार की द्वेष बुद्धि छोड दो और उपरोक्त मत्र का जाप करो।

रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र और पाडवों की लोग स्तुति क्यों करते हैं ? इसके विरुद्ध, रावण, कस और कौरवों को लोग धिक्कार क्यों देते हैं ?

इसलिये कि वे दूसरों के दुःख को अपना दुःख और दूसरों के सुख को अपना सुख समझते थे। स्मरण रहे, वे वीर थे और वीरों से ही दया (अहिंसा) होता है। अहिंसा क्षात्रधर्म के बिना नहीं पाली जाती। बनियाशाही के हाथों में जब से अहिंसा आई है तब से यह कायरों का चिह्न बन गई है।

मित्रों! आप (ओसवाल भाई) किसी जमाने में क्षत्रिय थे। आपके अन्दर क्षत्रियत्व का खून दौड़ना चाहिये। जितने तीर्थंकर हुए हैं वे सब क्षत्रियवंश में उत्पन्न हुए हैं। यह धर्म (अहिंसा) कायरों का नहीं है।

आप रामचन्द्र का कथा सुनिये—

जिस समय महाराणी केकई, महाराजा दशरथ से राम को वन वास और भरत को राज्य मिलने का वचन देने को कहती है, उसे सुन कर दशरथ मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं, इतने में राम आते हैं। पिता को मूर्छित अवस्था में देख कर केकई से पूँछते हैं—

"माता जी! क्या बात है, जो आप भी उदास हैं और पिता जी भी भूमि पर पड़े हुए हैं?"

केकई विकराल सिंहनी के रूप में बैठी थी, लाल लाल आँखें कर बोली—

"क्या बात है? बात क्या हो, यही बात कि तुम महाराज के पुत्र हो, वैसे मेरा पुत्र भरत नहीं है। माता जुदी जुदी हुई तो क्या, पिता तो एक ही है।"

राम— "हाँ माता जी! आप सही फरमाती हैं।

केकई— "तब तुम्हें राज्य मिले, और मेरे बेटे को नहीं?"

राम— "क्यों नहीं माता जी, जरूर मिलना चाहिये।"

केकई— "राम, तुम मीठे बहुत बोलते हो, पर अब मैं तुम्हारे फँदे में नहीं आने की।"

राम— "नहीं आना चाहिये माता जी, यह आपका फरमाना बहुत ठीक है।"

राम—(पिता की तरफ मुखातिब होकर) पिता जी ! पूज्य पिता जी !! आप वीर क्षत्रिय हैं, आपको माता के वचन सुन कर घबराना न चाहिये। आप शौक से माता के वचन को पूरा कीजिये। मुझे वन जाने में कोई दुःख नहीं है।

मित्रों ! आपमें ऐसा भ्रातृ प्रेम या मातृ प्रेम है ? आज भाई भाई छोटी छोटी बात के लिये सिर फोडने को तैयार हो जाते हैं। कोर्टों तक मुकद्दमा बाजी चलती है। मैंने सुना था कि बम्बई के अन्दर दो भाईयों ने अपने धन का बराबर हिस्सा बाँट लिया, पर बडे भाई का बोया हुआ एक सुपारी का पेड, छोटे भाई की जमीन के हिस्से में आ गया।

बडे भाई ने कहा—'मैंने इस पेड को बोया है, इसलिये इस पेड पर मेरा हक है।'

उत्तर में छोटा भाई बोला—'तुमने बोया तो क्या हुआ, मेरे जमीन के हिस्से पर है, इसलिये एक वर्ष सुपारी तुम लो और एक वर्ष हम।'

बडे भाई ने यह बात नहीं माना। आखिर, कोर्ट में मुकद्दमा चला। लाखों रुपये खर्च हो गये। जज एक दिन इन्कायरी करने के लिये उस पेड को देखने आये। यहाँ आकर कहा—'काट दो इस नाशकारी पेड को, जिसके कारण इतनी तकलीफ उठानी पडी।'

आखिर, पेट काटा गया। तब जाकर कहीं उन भाइयों को शान्ति आई।

सुपारी का पेड़ काटना जितना उन्हें श्रेय लगा, उतना एक के पास या आधा आधा देने में राजी न हुए।

मित्रों! कहाँ यह भाइयों का मारामारी मुकदमा और कहाँ राम का भाई के लिये राज्य को ठुकरा देना।

कैकेई दशरथ से कहती है—"पहले वचन देना सहज था अब पालना मुश्किल है।

राम! कुछ अन्याय से कहती होऊं तो तुम बोलो।"

राम—नहीं माताजी! आप अन्याय कैसे बोल सकती हैं? आप तो यह राज्य भरत के लिये मेरे भाई के लिये मांगती हो, न्याय के अनुसार किसी रास्ते चलने वाले के लिये मांगती तो भी अनुचित नहीं था।

रामने दूसरे के सुख के लिये वनवास ग्रहण किया था। बुरा क्या हुआ? लौटते समय लंका का राज्य अपने साथ और लेते आये।

मित्रों! "दूसरों का सुख चाहो" इस मंत्र का साधना अब और बतला कर क्या करूं? आप समझ ही गये होंगे।

यहाँ पर हमने मोटी मोटी बातों का थोड़े में दिग्दर्शन कराया है। हिंसा अहिंसा का विषय महान् है। सम्पूर्णता से कहना, हम से परे बात है। शास्त्र के अन्दर गणधरों ने इस विषय पर प्रकाश डाला है, सद्गुरु के द्वारा उनके परिश्रम का लाभ शुभदायी होगा।

जैसा अपने लड़कों को हीरा, माणिक, मोती की परीक्षा के समय बतलाये, उस समय उसे नकली हीरा, माणिक, मोती की ...भी बतला दे तो उसे बड़ा लाभ होता है। जब वह सामने रक्खे हुए हीरा, माणिक, मोतियों में से नकली हीरा, माणिक, मोती छाँट कर अलग रख दे, तब समझना चाहिये कि वह पूरा जौहरी बन गया। वह उसका व्यापार करे या न करे, यह बात जुदी है, पर यह तो निश्चय है कि व्यापार करना उसके लिये बड़ी बात नहीं है।

इसी तरह जो हिंसा अहिंसा के स्वरूप को समझ गया, समदृष्टि के प्रताप से उसके लिये बुरे को त्यागना कोई कठिन नहीं है।



सांसारिक कार्य और अहिंसा।





यह बात तो आप जानते ही हैं कि सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त होना साधु का काम नहीं है। यह काम गृहस्थ का माना गया है। साधु इस कार्य में इसलिये प्रवृत्त नहीं होते कि यह आरम्भ युक्त होता है। सच्चा साधु आरंभ का कोई भी काम नहीं करता इसीलिये शास्त्र के अन्दर साधु को निरारम्भी कहा है। संसारिक कार्यों में धनादि का होना आवश्यक माना गया है। साधु जब सांसारिक कार्योंमें हाथ डालना ही नहीं चाहता तब वह पैसा आदि क्यों कर अपने पास रक्खेगा। पैसा आदि पास न रखनेसे ही साधु को निष्परिग्रही भी कहा है।

जिस प्रकार शास्त्र के अन्दर साधु को निरारंभी निष्परिग्रह कहा है, उसी प्रकार श्रावक गृहस्थ को अल्पारम्भी अल्पपरिग्रही कहा गया है। यहाँ गृहस्थ के साथ 'श्रावक' शब्द हमने जान बूझ कर रक्खा है। कारण, श्रावक-गृहस्थ ही ऐसा हो सकता है। श्रावक से भिन्न गृहस्थ याने 'मिथ्यात्वी' दूसरे शब्दों में इहलौकिक सुख वैभव को ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य मानने वाला गृहस्थ ऐसा नहीं होता। वह महारम्भी महापरिग्रही बनने का ही अभिलाषी हुआ करता है।

इससे आप यह मत समझिये कि श्रावक [illegible] सुख से वंचित रहता है या वंचित रहने के लिये उसे उपदे[illegible] है। नहीं, श्रावक के लिये [illegible] के लिये प्रयत्न करता [illegible] का उद्देश्य नहीं [illegible] भारी अन्तर है।

दूसरा अन्तर यह है कि श्रावक को स्थूल हिंसा का सर्वथा त्यागी होता पड़ता है पर सूक्ष्मों की भी जहाँतक बन पड़ता है, का भ्यान रखता है। हाँ, पहला काम उसका स्थूल जीवों की रक्षा करना है। मिथ्यात्वी में यह बात नहीं होती। मौका पड़ने पर इस नियम का हद के पार भी काम कर बैठता है।

मित्रों! हमने ऊपर जिस श्रावक के गुण बतलाये हैं, वे विवेकी श्रावक के समझने चाहिये। केवल नामधारी आज कल के श्रावकों में यह गुण बहुत कम देखा जाता है। क्यों कि सच्चे उपदेश के अभाव से उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है। कर्तव्याकर्तव्य का अर्थ अच्छी तरह न समझ सकने के कारण ही बहुत से भाई कर्तव्य के पालने में ढीले दिखाई देते हैं। यह दोष, पालनेवाले भाईयों का कम अंशों में दिखाई देता है। मेरी समझ में यह दोष विशेष कर उपदेशकों का है कि वे क्रमश कर्तव्य पालने का उपदेश नहीं देते, या शास्त्रों का कुछ का कुछ अर्थ समझा देते हैं।

याद रखिये, जो साधु के कर्तव्य को गृहस्थ से पालने को कहता है वह उसे अपने मार्ग से च्युत करता है। आज गृहस्थ (श्रावक) के सिर पर सूक्ष्म की रक्षा का अर्थात् थावर जीवों की रक्षा करने का भार इतना डाल दिया कि वे इसका विशेष ज्ञान न रखने से, स्थूल हिंसा से भी नहीं बच सके। गृहस्थ के लिये मुख्य कर स्थूल हिंसा से बचने का विशेष आग्रह किया गया है। यदि स्थूल के सिवाय सूक्ष्म (थावर) हिंसा से ही बचने का मुख्य कर्तव्य होता तो शास्त्र में —

"थूला ओ पाणाइवाया ओ वे रमणम्।"

के बदले—

"सुहमा ओ पाणाइवाया ओ वे रमणम्।"

(?) को बतलाते।

शास्त्रकार ने पानी के अन्दर— नहीं नहीं पानी की एक बूंद के अन्दर असंख्याता जीव बतलाये हैं।

अब कोई पानी का प्यासा आया उसने पानी माँगा। पानी पिला दिया गया। वह भाई यहाँ यह बैठने हैं कि एक पचेन्द्रिय जीव की रक्षा के लिये असंख्यात जीवों का नाश हो गया, इसका जवाबदार कौन?

पर इस शास्त्र में, जहाँ तीर्थंकरों ने हिंसा का वर्णन किया है वहाँ देखते हैं कि पचेन्द्रिय जीव के सामने सूक्ष्म जीवों को उतना महत्व नहीं दिया गया है।

पचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करनेवालों को नरक गति मिली, ऐसा पाठ पढ़ने में आया है पर सूक्ष्म जीवों की हिंसा करने से भी मिली हो, ऐसा पाठ देखने में नहीं आया।

मित्रों! इस प्रश्न का विशेष खुलासा नेमीनाथ जी के विवाह से कीजिये।

२१ तीर्थकरों ने यह बात प्रसिद्ध की थी कि नेमीनाथ बाल-ब्रह्मचारी रह कर दीक्षा लेंगे। शास्त्र प्रसिद्ध होने से तथा नेमीनाथ स्वयं त्रिकाल-ज्ञानी होने से इस बात को जानते थे कि मैं बाल ब्रह्मचारी रह कर दीक्षा लूंगा। फिर उन्होंने यह विवाह का नया आडम्बर क्यों खड़ा किया? इसलिये कि यादवों के अन्दर महा हिंसा घुस गई थी। उस हिंसा को दूर करने के लिये विवाह प्रसंग को लेकर बाड़े में बंधे हुए पशुओं को करुणा से छुड़ा, और विवाह का त्याग कर प्रत्यक्ष रीति से अहिंसा और महा त्याग का जगत को प्रभाव बतलाया। यदि स्थावर जीवों की हिंसा पचेन्द्रिय जीवों के सदृश होती तो भगवान् नेमीनाथ को विवाह के प्रसंग, स्नान की कुंडी में बहुत सा जल इकट्ठा

मित्रों ! अब विचार करने की बात यह है कि बहुत जीव उस जल या कुंडों में थे या उस बाड़े में ? उत्तर यह होगा कि सूक्ष्म जीवों की संख्या से तो जल या कुंडा में असंख्य जल जन्तु तथा अपेक्षा से अनन्त जीव वास थे परन्तु बाड़े में तो गिनती के ही पशु पक्षी थे।

इस कथन को जरा बुद्धिपूर्वक समझना चाहिये कि यदि एकेन्द्रिय जीवों की रक्षा का, पचेन्द्रिय जीवों का रक्षा के बराबर महात्म्य होता तो भगवान् नेमीनाथ जी अपने स्नान करते समय ही यह बात कहते कि यह बहुत प्राणियों का हिंसा मुझे शांति दाता न होगा। यहाँ तो ऐसा कुछ भी न कह कर पशु पक्षियों के बाड़े के सामने ही ऐसा कथन किया कि --

" यह बहुत प्राणियों की हिंसा मुझे शान्ति दाता न होगी। "

इससे स्पष्ट रीति से यह बात मालूम पड़ती है कि पचेन्द्रिय का रक्षा महारक्षा है। नेमीनाथ जी ने अपने प्रलाप में पशु पक्षियों को छुड़ा कर उदाहरण उपस्थित किया। कोई तर्क कर सकता है कि--

' पचेन्द्रिय रक्षा में एकेन्द्रिय जीव मारे जायें तो एकेन्द्रिय की संख्या बहुत होने से पचेन्द्रिय की रक्षा की अपेक्षा एकेन्द्रिय का पाप ज्यादा होगा। '

यह कहना सर्वथा मिथ्या है। अगर ऐसा होता तो दया को प्रगट करने के लिये स्नान आदि का आरम्भ का आडम्बर नेमीनाथ भगवान् कभी स्वीकार नहीं

मित्रों ! आज कल आप लोगों में गैर-समझ फैल रही है। अमृतलाल भाई बाई को प्यास लगी। उसने एक श्राविका माँगा। पर उसने इसलिये नहीं दिया कि

होता है। इस बहन ने यह तेले का दंड किसमें से निकाला यह हमारी समझ में नहीं आया। अमेरिकावाले यहाँ आकर हमारे भाइयों पर दया करें, पर हम अपने भाई बहनों के प्रति तिरस्कार करें, यह कहाँ का न्याय है ?

मनुष्य, पशु पर दया और छोटे छोटे जीवों को बचाने की कोशिश करे पर मनुष्य के प्राण जाते हों उस तरफ कुछ भी ध्यान न दें यह कितनी भारी गैर समझ है !

मित्रों ! साधु को तो छः काया की हिंसा का त्याग है, आपको नहीं है, फिर भी सूक्ष्म जीवों की ओट में आप अपने कर्तव्य के प्रति उदासीनता दिखलाते हो यह उचित नहीं है।

दुनियाँ में ऐसा कोई आरंभ का काम नहीं जिसमें कर्मबंध न होता हो। काम को ज्ञान पूर्वक करने से पाप बंध कम होता है और अज्ञान से करने से भयंकर पापबंध हो सकता है।

कई भाई विचारते होंगे कि रोटी करने वाली बहन पाप से नहीं बच सकती। मैं कहता हूँ वह पाप से बहुतांश में बचती हुई पुण्य प्रकृति का बंध भी कर सकती है। आप कहेंगे—'कैसे ?' इसका उत्तर है—'जो बहन रसोई करने को अपने पर आया हुआ कर्तव्य समझती है, यह समझती है कि इस रोटी से बहुतों की आत्मा को शान्ति मिलेगी, अपने को मजदूरनी न समझ कर जयणा पूर्वक लकड़ियों को, कण्डों को और चूल्हे को साफ करती हुई, जीवों को बचाती हुई रसोई करती है, वह पाप प्रकृति में भी पुण्य प्रकृति बाँधती है। पर जो अपने को मजदूरनी समझ कर बेपरवाही से रसोई करती है और भोजन करनेवालों को राक्षस समझती है वह बहन पाप प्रकृति में, और पाप प्रकृति बाँध लेती है।

बहुतसी बहनें रसोई न करने में अपने को पाप से बची हुई समझती है। पर मैं कहता हूँ कि यह उनका एकान्त यथार्थ खयाल नहीं है।

आज की बहुतसी बहनों का जीवन आलस्यमय बन गया है। ये शास्त्र के वास्तविक अर्थ को तो स्वयं कुछ समझती नहीं और न समझने की कोशिश करती है। शास्त्र में कहा क्या है और ये काम में किस ढंग से लाती है। ये हम लोगों (साधुओं) के पास से घट्टी न फेरने की, पानी न लाने की, रसोई न करने का सौगन्द लेती है। ये समझती है कि ऐसा करने से हम पाप से बच जायँगी। पर इन लोगों ने इस बात पर कभी विचार न किया कि आटा खाना पड़ेगा, पानी पीना पड़ेगा और रोटी भी जीमना पड़ेगा ही, फिर पाप से कैसे अलग रह सकेंगी।

आज की बहनों के लिये रसोइया चाहिये, पानी लानेवाला चाहिये, आटा सीधा मोल आना चाहिये। ये तो सिर्फ गहने पहन कर अंग को मरोड़ती हुई चलने में ही अपनी शान समझती हैं। कैसी उलटी समझ ? ये बहनें यह नहीं सोचती कि रसोई करने में, पानी लाने में, आटा पीसने में जितनी हम जयणा कर सकती हैं उतनी मजदूर या मजदूरनी कभी नहीं कर सकती।

याद रखिये, आज कल के नौकर लोगों का व्यवहार प्रसिद्ध है। रसोई करनेवाले नौकर कई बार आटे में जीव है या नहीं, इसका कुछ भी ध्यान न रख अंधा-धुंधी से आग जला, रसोई बना कर रख दी जाती है। पानीवाले भी कई, मालिक पानी मंगवाता है कुए का, और वे आलस्य से नल से ही ले आते है। कुए पर जाते भी हैं तो कुछ छाना कुछ न छाना पानी ले आते हैं। यही दोष कई चक्की पीसनेवालियों में भी समझ लीजिये। क्या जितनी चिंता जीव बचाने की आप लोगों की होती है उतना इनकी हो सकता है ?

'कभी नहीं।'

बहुधा गेहूँ आदि के साथ अन्य सैकड़ों प्राणी भी पीस लिये जाते हैं।

भाइयों, जरा विचार कीजिये यह सब पाप किसके जुम्मे आयेगा?

आप लोगों ने पुण्य बांधने की कोशीश की, पर यह तो उलटा पाप गले बंध गया। मसल यह हुई कि 'मियाजी नमाज छुडाने गये उल्टे रोजे गले पडे।'

सुना जाता है कि आज कल लोगों की प्रवृत्ति फ्लोअर मिल (आटा पीसने की चक्की) में आटा पिसाने की ओर बहुत बढ रही है। याद रखिये, इन मिलों में आटा पिसावाने में गेहुँओं का सार (पोष्टिक तत्व) जल जाता है। शरीर के पोषण के लिये बहुत कम अंश बाकी रह जाते हैं। दूसरी बात यह है कि घट्टी में आटा पीसना, और इस मिल में पिसवाना, इसमें जो पाप होता है उसमें भी आकाश पाताल का अन्तर होता है। थोडी देर के लिये मान लीजिये कि आपने अपने घर सेर दो सेर या पाँच सेर जितना भी आटा पीसा, सिर्फ उसी का जितना पाप लगना होगा, लगेगा। पर आप जब गिरना (मिल) में आटा पिसवायेंगे, वह चाहे एक सेर पिसवाया हो या एक मन, पर दिन भर उसके चलने से उसके आटा पीसने से जो पाप होगा, उस सब पाप के हिस्से में आपका भी हिस्सा रहेगा। मिल में आटा पिसवाना, उससे होने वाले पाप में सीर (हिस्सा) डालना है।

कल्याण (बम्बई) में मैंने अपनी आखों से देखा है कि जिस गिरनी में अपने भाई आटा पिसवाते हैं उसी में मांस बेचनेवाले जब मांस बेच डालते हैं तब लौटते समय उसी टोपली में पिसवाने के लिये गेहूँ लेते आते हैं और उसी गिरनी में पिसवाते है। वे गेहूँ, मांस की टोपली में

आने से माम का कुछ अश उन गेहुओं में आ जाता है। वे गेहूं जब गिरना में पिसवाय जाते हैं तब उन गेहुओं का अश उसमें रह जाता है। अब आप गेहूं पिसाने आप उनका गेहुओं का अश पहले से ही लगा तो रहता ही है अब वह अश आपके गेहुओं में आ गया, आपने वह आटा खाया, कहिये आप भ्रष्ट हुए या नहीं?

आलस्य के कारण धर्म की ओट में जो आटा पीसने का त्याग ले लेता है और धार्मिणी बन बैठता है, उसे मैं तो तब धर्मिणी समझूँ जब वह आटा खाने का ही त्याग ले ले।

मैं दादर (बम्बई) भी था तब कुछ काठियावाड़ी बहनें दर्शन करने आई। उनमें एक बुड्ढी बहन भी थी। बात चलने पर मैंने उनसे कहा 'गिरना में तो आप अब आप नहीं पिसवाती हैं न?'

बुढ्ढी बोली— "मने तो काई हरकत न था, पर ए म्हारी वहुओं कहे छे के— 'अमा बम्बई नी सेठाणियों थई, हवे हाथ थी पासशों?'"।

मैं— "ठीक, ए बेनों बम्बई नी सेठाणियों थई एटले पीसवानो दुःख तो बीजा ने आप्यो, ए दुख थी मुक्त थई, पण सन्तति प्रसव करवानु दुःख, जे एक महा दुःख गणाय छे— आना न सुपर्द का धू के?

मित्रो! सतति प्रसव करना एक महा संकट से निकलना है, इस संकट से न निकल कर केवल घी पीसने के संकट से ये दूर हो गई तब ये बम्बई की सेठानियें कैसे बन गई?

यहाँ (मारवाड़) की बहनें कुछ कम नहीं हैं। इनसे दो कदम आगे रखने वाली हैं।

बहनो, धर्म का ठाठ रच कर आलस्य से जीवन मत बिताओ। यदि आलस्य से ही सुख में पड़े रहने से ही मोक्ष मिलती हो तो

एकेंद्रिय जीवों का मोक्ष क्यों नहीं हो जाता ? ये २२००० वर्ष की आयुष्य को बिना हाथ पांव हिलाये डुलाये बैठे रहते हैं, क्यों इनकी मोक्ष होने में देर हो रही है ?

याद रहे, आलस्य करने से मोक्ष नहीं मिलती।

भाइयों और बहनों ! आप लोग शास्त्रों को देखिये-समझिये, यदि स्वयं में इतनी शक्ति न हो कि उनके तत्त्व को समझ सकें तो सद्गुरुओं से समझिये। जब आप शास्त्रतत्त्व को समझ लेंगे और यह जान जायेंगे कि किस क्रिया के करने से पुण्य तथा पाप होता है, तब पता लग जायगा कि हमें क्या करना चाहिये और उनसे अनभिज्ञ रहने के कारण अभी क्या कर रहे हैं। इस ज्ञान के अभाव से लोग केवल देखा-देखी का अनुकरण करते हैं और अल्प पाप में भी महा पाप मान कर निरोध करते हैं। उदाहरण रूप, कई भाई सर्वव्रती साधु मुनिराजों को आचार विचार पालते हुए देख कर उनकी सूक्ष्म बातों का उसी मांति का अनुकरण करना प्रारम्भ कर देते हैं। साधु किसी को दान नहीं देते इस लिये हम भी साधु के सिवाय किसी को न दें, साधु, गृहस्थ को अनेक प्रकार की क्रियाओं के द्वारा उनका जीवन निर्वाह रूप परोपकार नहीं करते वैसे हम भी न करें, या साधु जिन कामों को न करें, ऐसे परोपकार कार्य में पाप समझें।

यह समझना शास्त्र विधि के अनजानों का है। क्यों कि सर्वव्रती मुनिराजोंका आचार कल्प और कल्प की मर्यादा अलग है और गृहस्थोंकी अलग। जैसे कि जिनकल्पी महात्मा अकेले रहते, मौन रखते, धर्मोपदेश नहीं देते, दूसरे साधुओं कि वैयावच आदि कार्य नहीं करते, यह उनका कल्प है। परन्तु यदि स्थविरकल्पी साधु जिनकल्पी के देखा-देखी अनुकरण करके वैयावच्च करना, संघ की सेवा करना, परोपकार करना छोड़ दे तो उसको निर्दयी कहा है।

जैसे— ठाणांग सूत्र के ४ थे ठाणे में— " आय अणुकम्पे नाम-
मेगे नो पराणुकम्पे । " अर्थात् कोई कोई पुरुष अपनी आत्मा की ही
खान पान आदि से रक्षा करता है परन्तु दूसरे की नहीं करता, वह या
तो जिनकल्पी या प्रत्येक-बुद्धि या निर्दयी कहा है । ' शास्त्र के इस
कथन में यह बात स्पष्ट है कि जिनकल्पी या प्रत्येकबुद्धि दूसरे की अन्न
पानी आदि से रक्षा न करे यह उनका उत्कृष्ट उत्सर्ग मार्ग का कल्प है
परन्तु यदि स्थविर कल्पी साधु उसका अनुकरण करके दूसरे साधुओं
की अन्न पानी आदि से अनुकम्पा न करे तो वह निर्दयी कहा जाता है।
वैसे ही साधु महात्माओं का जिन जिन कामों को करने का कल्प नहीं
है उन उन कामों को मुनिराज का कल्प बतला कर, अगर श्रावक भी
परोपकारादिक छोड दे तो उसे भी निर्दयी समझना चाहिये । इसलिये
साधु के देखा देखी परोपकार के काम गृहस्थ को छोड देना विधि मार्ग
का अज्ञान है ।

साधुओं का भाव शुचि अति उत्कर्ष होने से स्नान दंत धावन
आदि की, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये द्रव्य शुचिकी तरफ शास्त्र विधिसे
उदासीनता देख कर कोई भोला जीव यह अर्थ निकाले कि जैसे
साधु महात्मा स्नान दंत धावन आदि नहीं करते इसलिये श्रावकों को भी
नहीं करने चाहिये, यह समझना श्रावक के कल्प से अनजानों का है।
क्यों कि शास्त्र में ' आनंद ' आदि श्रावकों का आचार कथन जहाँ
चला है वहाँ स्नान की और दंत धावन आदि की विधि का कथन है ।
परन्तु सर्वथा नहीं करना ऐसा नहीं है । कोई मूर्खता से कहे कि श्रावक
को दन्त धावन स्नान आदि नहीं कल्पता, समझना चाहिये कि वह
शास्त्र व श्रावक-धर्म से अनजान है ।

शास्त्र में गृहस्थाश्रम चलानेवाले श्रावक के लिये स्नान या दंत
धावन आदि बाह्य शुचि का निषेध नहीं किया है बल्कि अविधि का

किया है। हाँ, अलबत्त स्नानादिक को श्रावक बाह्य शुचि समझता है किंतु अंतरंग भावशुचि नहीं समझता। जैनेतर शास्त्रों में भी स्नान को इसी रूप में माना है।

जो लोग इस द्रव्य भाव शुचि के भेद को न समझ कर केवल गृह-स्थाश्रम में रह कर गंदेपन से शरीरादिक को रख कर लोगों में यह कहता है कि 'गन्दा रहना, स्नानादि न रहना, यह हमारे श्रावक का आचार है' ऐसा कहनेवाला जैन धर्म के श्रावक की मर्यादा का अनजान है और जैन समाज में धर्म की घृणा पैदा करने रूप पाप का भागी है।

साधु मुनिराजोंकी आचार विधि श्रावकों से बिलकुल भिन्न है अतः श्रावक के लिये साधुओं की क्रिया पालने का कहीं आदेश नहीं है। यह बात मैं अपने मन से नहीं कह रहा हूँ, शास्त्र देखने से आपको इस बात का पता लग जायगा।

श्रावकों को सोच समझ कर ही किसी बात का त्याग लेना चाहिये, देखा देखी नहीं। साधुओं को भी त्याग कराते समय श्रावक की वस्तु स्थिति पर दृष्टि अवश्य डालनी चाहिये। यह नहीं कि कोई श्रावक बैठे बैठे ही वैराग्य में आकर संथारा लेने की इच्छा प्रगट करे और साधु वास्तविक स्थिति को न समझ कर झट त्याग करा दे। यदि इस प्रकार का श्रावक मेरे से त्याग लेगा और मैं उसे इसके अयोग्य समझूँगा तो इस कृत्य के लिये साफ इन्कार कर दूँगा। मैं अंध-श्रद्धावाला तो हूँ नहीं कि बच्चा भी अगर अन्न का त्याग ले तो मैं उसे धर्म समझ कर दे दूँ।

जो साधु लौकिक दृष्टि को सामने न रखते हुए गृहस्थ को किसी ऊँचे प्रकार का त्याग करा देता है समझना चाहिये कि वह उस पर अनुचित बोझ डालता है।

मुनियों को अपनी विधि पालने के लिये, शास्त्र में लिखे किसी उच्च साधु को अपना आदर्श मानना चाहिये उसी प्रकार श्रावक को अपनी

विधि पालने के लिये 'आनन्द' आदि उच्च श्रावकों की दिनचर्या पर ध्यान देना चाहिये। 'आनन्द' आदि श्रावकों की नोंध शास्त्र में श्रावकों के आदर्श के लिये ही दी गई है। यदि ऐसा न होता तो इन लोगों की नोंध लेने से शास्त्र को क्या लाभ?

'आनन्द' आदि उच्च पुरुषों की दिनचर्या के अनुकूल अपनी दिनचर्या न बिताने के ही कारण आज भारत के मनुष्यों का आयु बहुत घट गया है। आज के लोगों की दिनचर्या स्फूर्तिप्रद होने की जगह आलस्यमय हो गई है। यही कारण है कि यूरोप के मनुष्यों की आयु औसत, प्रतिशत ७० से ७५ है, और भारतीयों की २० से २५ तक की ही !!

विचार कीजिये इतना महदन्तर क्यों? यूरोप वृद्ध होकर क्यों मरता है और भारत तरुण होने के पूर्व ही क्यों मर जाता है? जिस आयु में यूरोप निवासी सेनामें भर्ती होने की उत्कंठा प्रदर्शित करता है वहाँ भारतीय मृत्यु की घड़ियें क्यों गिनने लगता है? सिर्फ एक कारण, उनका रहन सहन विधि व्यवहार सब नियमित और यहाँ वालों का सब अनियमित! भला अनियमित जीवन भी कोई जीवन है?

मित्रों! मैंने ऊपर आपको देखादेखी अनुकरण करने का कुछ दिग्दर्शन कराया, अब जरा कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान न होने से अल्प पाप को महापाप समझ कर विरोध करते हैं, इस पर भी कुछ कह देना चाहता हूँ। दूर कहाँ जाऊँ, आप खादी को ही लीजिये। लोग कहते हैं—'हम खादी इसलिये नहीं पहनते कि चर्खा गरन गरन फिरता है इससे वायु काय की हिंसा होती है।' ठीक है, पर विलायती (मैंचेस्टर आदि का) कपड़ा तो छहो, काया की हिंसा के द्वारा तैयार होता है, यह आपको मालूम है?

मित्रों ! वीतराग का मार्ग, जैसा आप समझते हैं, उससे निराला है। आज आप आटे की मौंड लगा कर कपडा तैयार करके देनेवाले रेगरों और बलाइयों को अछूत कहते हैं, उनसे दूर रहते हैं। पर मिल के कपडों में अक्सर चर्बी लगाई जाती है—— चर्बीवाले कपडे आपके गले में डालते हैं उन्हें आप 'बडे सेठ'— क्योंकि वे मिल के मालिक हैं न,— कहते हैं और उनसे हाथ मिलाने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। चर्खे से सूत पैदा कर कपडे बनवाने में लोग पाप समझते हैं और 'मैंचेस्टर' के कपडे को पहन कर 'पवित्र हो गये' मानते हैं। ऐसी बुद्धि को क्या कहना चाहिये, जो महा हिंसा करने वाले को उत्तम और अल्प हिंसा करने वाले को नीच माने ?

चर्खों के लिये आज के वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि यह सिर्फ पैसा पैदा करने का ही नहीं, पर एकाग्रता प्राप्त करने का भी साधन है। यह चर्खा विधवाओं के धर्म की रक्षा करने वाला और भूखों की भूख मिटाने वाला कहा जाता है। देश की दरिद्रता मिटाने के लिये आज की बडी बडी धनशाली बहनें भी इसे कातती है। चर्खा आज कल का आविष्कार नहीं, बहुत पहले का है, इसका जिक्र जैन शास्त्रों की कथा में भी आया है। इस पर योग्य विचार कर्तव्याकर्तव्य का जानकार ही कर सकता है।

आज कर्तव्य के विषय में बडी उलटी समझ हो रही है तभी तो लोग खेती को महा पाप और दूसरे अनार्य वाणिज्य को श्रेष्ठ समझते हैं। यह भी सुनने आया है कि लोग बाजार से घी लाने में पुण्य और घर पर गाय को पाल कर घी पैदा करने में पाप मानते हैं।

पर याद रखिये, खेती को जैन शास्त्र में वैश्य कर्म बतलाया गया है।

उत्तराध्ययन जी के ३ रे अध्याय में ऐसा कथन है कि चार अंग का आराधन करने वाला पुण्यशाली पुरुष स्वर्ग—सुख उपभोग कर उस घर में जन्म लेता है जहाँ दस बोल का योगवाई होती है। पहला

बोल ' खेत्त वत्थु ' अर्थात् सेतु व केतु ये दो प्रकार के धान्या दि निष्पत्ति के योग्य क्षेत्र हों। अर्थात् जो जल के सींचने से पैदा हो उसे सेतु कहते हैं और जो वृष्टि के जल से धान्यादि निष्पन्न हो केतु क्षेत्र कहते हैं। वह पुण्यवान् पुरुष ऐसे ही गृहस्थ के घर जन्म लेता है। इस कथन से स्पष्ट है कि खेती महापाप का धंदा नहीं पर पुण्यवालों की ऋद्धि मानी गई है। तथा उत्तराध्ययन सूत्र, २५ वें अध्ययन में जहाँ वैश्य कर्म का वर्णन है—' वइस्सो कम्मुणा होइ ' इस पाठ की टीका में ' कृषिपशुपाल्यादिनामवति ' लिखा है। अर्थात् खेती करने व पशुओं की पालना करने से वैश्य कहलाता है। इसमें भी वैश्य का कर्म कृषि करना प्रधान लिखा है। भगवान् ऋषभदेव जी ने कर्म के तीन भेद बतलाये हैं ' असि मसि और कृषि। ' अर्थात् खेती करना भी प्रधान आजीविका कर्म में है।

इन कथनों से मालूम होता है कि जैन शास्त्र वाले खेती को अनार्य कर्म या अस्वाभाविक कर्म नहीं कहते।

अब रही बाजार के घी की बात। जरा इस पर विचार कीजिये। क्या बाजार का घी आकाश से टपक पड़ा?

' नहीं। '

किसी ने और किसी ने तो गौओं की रक्षा की ही होगी तभी घी मिला।

दूसरी बात, आजकल घी में बड़ा गोटाला सुनाई पड़ता है। कहा जाता है कि ' वेजाटेबल ' आदि कई विलायती घी आने लग गये हैं। वैज्ञानिकों ने प्रसिद्ध किया है कि बहुतों में चर्बी का मिश्रण होता है।

विदेशी घी एक रुपैया का जितना मिलता है उतने देशी घी के दो रुपैये लगते हैं। जिस देशवाले इस भारत से हजारों मन मक्खन

ले जावें, ये भारतीयों को सस्ता घी दें इस में कुछ न कुछ रहस्य समझना चाहिये। क्योंकि वे दिवालिये बनने के लिये तो व्यापार करते ही नहीं न ?

मित्रों! आप अहिंसावादी होने का गौरव करते हैं तो अहिंसा का सच्चा अर्थ समझिये। अहिंसक कहलाने वाले कई भाई अहिंसा का वास्तविक अर्थ न जानने से कई बार ऐसे काम कर बैठते हैं कि अन्य धर्मावलम्बी बन्धु उनके कार्यों को देख कर हँसी उड़ाते हैं, और तो और जैन धर्म को लजाते हैं।

कहाँ जैन धर्म की अहिंसा की विशालता और कहाँ इन भाइयों की अहिंसा के पीछे हिंसा का बड़ा भाग!

हिंसा अहिंसा का रूप न समझ सकने के कारण ही कई भाई चींटी मर जाने पर जितना अफ़सोस जाहिर करते हैं, उतना भी [illegible] मनुष्य पर अत्याचार करने में नहीं लाते!

यह बात हृदय में अंकित कर लीजिये कि [illegible] जितना पाप है कायरता के भय से (वश न चलने से) [illegible] गुणा मौनावलम्बन कर अत्याचार सहन कर लेना भी [illegible] है। हाँ, वास्तविक शांतिधारण कर लेना यह तो [illegible]

पत्रों में पढ़ते हैं कि— 'गुंडे लोग हिन्दू [illegible] कर ले जाते हैं। स्त्रियों को अकेले में देख कर [illegible] फलस्वरूप, जिस प्रकार उन लोगों का नीच और [illegible] जायगा, यदि उसी प्रकार पति, पुत्र, भाई [illegible] चोरी कर ले जाय और ये कायर बन कर [illegible] गुंडे से भी महानीच, महाकायर और [illegible]

वह मनुष्य पुत्री का पिता, बहिन का भाई, पत्नी का पति और और माता का पुत्र होने लायक नहीं है जो मौका पड़ने पर उनकी रक्षा न कर सके।

दु ख के साथ कहना पड़ता है कि आज के अधिकांश जैन-बन्धु इस मामले में अपने अन्य सहयोगी (हिन्दू) बन्धुओं से बहुत पीछे नजर आते हैं। जैनों की अहिंसा पर लोग टीका टिप्पणी करते हैं और इनकी अहिंसा को कायर 'बनानेवाली' कहते है शायद इसका कारण भी यही हो।

'सुधा' नामक पत्रिका मे अहिंसा पर एक आलोचनात्मक लेख पढा था। उसमें लेखक ने गीता के--

"अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन"

इस श्लोक में जो 'अनार्य' शब्द आया है उसका अर्थ-- 'जैन' या 'बौद्ध' किया है। शायद उसने आज के जैनों की अकर्मण्यता देख कर ऐसा अनुमान लगा दिया हो। पर यदि लेखक जैन शास्त्र की अहिंसा पर लिखने के पहले शास्त्रों का अवलोकन कर विचार पूर्वक लिखा होता तो मेरा अनुमान है कि ऐसा लिखने का कभी साहस न करता।

जैनों की अहिंसा अनार्यों की नहीं पर वीर आर्यो की है। सच्चा जैन काम पड़ने पर रण सग्राम में जाने से नही हिचकता। हाँ, वह इस बात का जरूर खयाल रखता है कि मैं अन्याय का भागी न बन जाऊँ, मेरे से व्यर्थ की हिंसा न होजाय।

अहिंसा कायर बनाती है या कायरों की है यह बात अहिंसा के वास्तविक गुण को न समझने वाले ही कह सकते हैं। अहिंसा व्रत वीर शिरोमणि ही धारण कर सकता है। कायर अहिंसा-धारी नहीं कहला

सकते। वे अपनी कायरता छिपाने के लिये भले ही अहिंसा का ढोंग रचले पर उन्हें अहिंसक कहना योग्य नहीं कहा जा सकता। वैसे तो सच्चा अहिंसावादी व्यर्थ मे एक चींटी के प्राण हरण करने में घरा जायगा क्यों कि यह सकल्पजा हिंसा है। इस कृत्य को वह अपना व्रत भग का कारण समझता है। पर जब न्याय से रण सग्राम में जाने का मौका आ पडे तो वह सग्राम करता हुआ भी अपने व्रत को अखडित समझता है।

मित्रों! जो सकल्पजा हिंसा करता है उसे पापी के नाम से पुकारते हैं पर जो आरम्भ जनित करता है उसे इस नाम से नहीं पुकार सकते।

भाइयों! अब आप लोग समझ गये होंगे कि जैन की अहिंसा इतनी सकुचित नहीं है कि ससार कार्य में बाधक हो, पर इतनी निस्तृत है कि बडे बडे राजा महाराजा भी धारण कर सकते हैं। उनके व्यवहार में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आ सकती। जैन अहिंसा यदि सकुचित होती ओर ससार कार्य में बाधक होती तो पूर्व के राजा महाराजा इस धर्म को कैसे धारण करते ?

मैं पहले कह चुका हूँ कि श्रावक सकल्पजा हिंसा का त्यागी होता है और आरमजा का आगार रखता है। वह आरम्भ से बचने की कोशीश सकल्पजा से पहले करने में महा मूर्खता मानता है। उसे क्रम से करना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। वह मानता है कि इसमें ज्यादा कठिनाइयों का सामना भी नहीं करना पडता।

प्यारे मित्रों! आप लोगों को अहिंसा का अच्छी तरह ज्ञान हो जाय इसलिये अब एक मोटी बात और कह देता हूँ।

अहिंसा के आप तीन भेद कीजिये। सात्विकी राजसी और तामसी। सात्विकी अहिंसा वीतराग पुरुष, पूर्णत्यागी मुनिगण, आरम्भ

वह मनुष्य पुत्री का पिता, बहिन का भाई, पत्नी का पति और और माता का पुत्र होने लायक नहीं है जो मौका पडने पर उनकी रक्षा न कर सके।

दु ख के साथ कहना पडता है कि आज के अधिकाश जैन-बन्धु इस मामले में अपने अन्य सहयोगी (हिंदू) बन्धुओं से बहुत पीछे नजर आते हैं। जैनों की अहिंसा पर लोग टीका टिप्पणी करते हैं और इनकी अहिंसा को कायर 'बनानेवाली' कहते है शायद इसका कारण भी यही हो।

'सुधा' नामक पत्रिका में अहिंसा पर एक आलोचनात्मक लेख पढा था। उसमें लेखक ने गीता के--

"अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन"

इस श्लोक में जो 'अनार्य' शब्द आया है उसका अर्थ--'जैन' या 'बौद्ध' किया है। शायद उसने आज के जैनों की अकर्मण्यता देख कर ऐसा अनुमान लगा दिया हो। पर यदि लेखक जैन शास्त्र की अहिंसा पर लिखने के पहले शास्त्रों का अवलोकन कर विचार पूर्वक लिखा होता तो मेरा अनुमान है कि ऐसा लिखने का कभी साहस न करता।

जैनों की अहिंसा अनार्यों की नहीं पर वीर आर्यों की है। सच्चा जैन काम पडने पर रण सग्राम में जाने से नहीं हिचकता। हाँ, वह इस बात का जरूर ख्याल रखता है कि मैं अन्याय का भागी न बन जाऊँ, मेरे से व्यर्थ का हिंसा न होजाय।

अहिंसा कायर बनाती है या कायरों की है यह बात अहिंसा के वास्तविक गुण को न समझने वाले ही कह सकते हैं। अहिंसा व्रत वीर शिरोमणि ही धारण कर सकता है। कायर अहिंसा धारी नहीं कहला

सकते। वे अपनी कायरता छिपाने के लिये भले ही अहिंसा का ढोंग रखले पर उन्हें अहिंसक कहना योग्य नहीं कहा जा सकता। वैसे तो सच्चा अहिंसावादी व्यर्थ में एक चींटी के प्राण हरण करने में धर्रा जायगा क्यों कि यह सकल्पजा हिंसा है। इस कृत्य को वह अपना व्रत भग का कारण समझता है। पर जब न्याय से रण सग्राम में जाने का मौका आ पडे तो वह सग्राम करता हुआ भी अपने व्रत को अखंडित समझता है।

मित्रो! जो सकल्पजा हिंसा करता है उसे पापी के नाम से पुकारते हैं पर जो आरम्भ जनित करता है उसे इस नाम से नहीं पुकार सकते।

भाइयो! अब आप लोग समझ गये होंगे कि जैन की अहिंसा इतनी सकुचित नहीं है कि ससार कार्य में वाधक हो, पर इतनी विस्तृत है कि बडे बडे राजा महाराजा भी धारण कर सकते हैं। उनके व्यवहार में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आ सकती। जैन अहिंसा यदि सकुचित होती और ससार कार्य में बाधक होती तो पूर्व के राजा महाराजा इस धर्म को कैसे धारण करते?

मैं पहले कह चुका हूँ कि श्रावक सकल्पजा हिंसा का त्यागी होता है और आरभजा का आगार रखता है। वह आरम्भ के कम करने की कोशीश सकल्पजा से पहले करने में महा मूर्खता मानता है। उसे कम से करना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। वह मानता है कि इसमें ज्यादा कठिनाइयों का सामना भी नहीं करना पडता।

प्यारे मित्रों! आप लोगों को अहिंसा का अच्छी तरह बोध हो जाय इसलिये अब एक मोटी बात और कह देता हूँ।

अहिंसा के आप तीन भेद कीजिये। सात्त्विकी राजसी और तामसी। सात्त्विकी अहिंसा वीतराग पुरुष, पूर्णत्यागी मुनिगण, उत्तम

त्यागी विवेकी श्रावक आदि निरारम्भ रीति से अर्थात् जिस वृत्ति को पालते हुए दूसरे किसी जीव को दुःख न हो, वे ही पाल सकते हैं। राजसी अहिंसा उसे कहते हैं जिसमें अन्याय के प्रतिकार के लिये आरम्भजा हिंसा करनी पड़े। जैसे राम और रावण का दृष्टान्त लीजिये। रावण, राम की सीता को हरण कर ले गया था। राम ने सीता को माँगा, पर उसने न दिया, तब लाचार होकर राम ने उसके विरुद्ध शस्त्र उठाया और उसका नाश किया। यह हिंसा जरूर है पर वह राजसी अहिंसा का ही पक्ष कहलाता है। रावण ने शस्त्र उठाया वह संकल्पजा हिंसा था और राम की आरम्भजा, बस इस में यही फर्क है। चेटक महाराजा और कोणिक का संग्राम बतलाता है कि श्रावक अपने अहिंसा व्रत को पालन करता हुआ न्याय पक्ष की रक्षा के लिये जो हिंसा करता है वह आरम्भजा हिंसा है परन्तु संकल्पजा हिंसा की अपेक्षा अहिंसा ही है। यह अहिंसा सात्विकी से नीचे है पर तामसी* से—जिसमें अपनी माता, स्त्री, बहन आदि पर अत्याचार कोई करता हो, उसे देख कर मन में बहुत क्रोध रखता है, पर कहीं मर जाऊँगा या मुझे कोई मार डालेगा अतः चुप्पी साधना ही अच्छा है, लोगों के कहने पर कहे कि मैं अहिंसा व्रत का पालक हूं, मुझे उस पर दया आगई थी, इसलिये छोड़ दिया—इससे बहुत ऊँची है। तामसी अहिंसा आत्मा के सद्गुण को नाश करने वाली और पतन की तरफ ले जाने वाली है। जो ऐसी अहिंसा से अहिंसक कहलाना चाहता है वह वास्तव में कायर है, नपुंसक है, संसार में बोझ रूप है। इतना ही नहीं, वह संस्कृति का और धर्म का महा घातक है।



*तामसी अहिंसा केवल दिखने ... द्वारतय